टूटा किनारा

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक

यशोविमलानन्द

१९५७

प्रीमियर पब्लिशिंग कम्पनी

फव्वारा—दिल्ली

प्रकाशक
प्रीमियर पब्लिशिंग कम्पनी
फव्वारा-दिल्ली

मूल्य
३॥)

श्यामकुमार
हिन्दी प्रिंटिंग

भूमिका

आयुष्मान् श्री यशोविमलानन्द एक ऐसे कुटुम्ब के व्यक्ति हैं जहाँ भगवती सरस्वती की अर्चना निष्ठापूर्वक होती है। इनके ज्येष्ठ पितृव्य आदरास्पद बाबू सम्पूर्णानन्द जी देश के लब्धप्रतिष्ठ विद्वज्जनों में परिगणित हैं। यशोविमलानन्द के पिता श्री परिपूर्णानन्द जी हिन्दी के माने-जाने विद्वान लेखक हैं।

यशोविमलानन्द जी स्वयं हिन्दी में एकाधिक उपन्यास लिख चुके हैं। यह उपन्यास, 'टूटा किनारा' उनकी सद्यकृति है। यशोविमलानन्द जी में लेखन-सामर्थ्य प्रचुर मात्रा में है। वर्तमान सामाजिक उलझनों को उन्होंने हृदयङ्गम किया है। उनकी दृष्टि व्यापक और सह-अनुभूतिपूर्ण है।

मुझे आशा है कि 'टूटा किनारा' उपन्यास हिन्दी भाषा-भाषियों को रुचिकर होगा। यशोविमलानन्द जी हिन्दी उपन्यास साहित्य की श्रीवृद्धि करेंगे—ऐसा मुझे विश्वास है।

५ विड्सर प्लेस, नई दिल्ली **बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'**

२ अक्तूबर, गान्धी जयन्ती, १९५७

अपनी बात

'अगली साँझ' के बाद दूसरा उपन्यास जल्दी ही शुरू न हो सका। कभी ऐसा भी सोचने लगता जैसे अब फिर कभी और कोई उपन्यास न लिख सकूँगा। जब तक इधर-उधर की ठोकरें खाता रहा बराबर उपन्यास या कहानी के रूप में कोई-न-कोई चीज़ निकलती रही। सरकारी नौकरी का दामन पकड़ा, जीवन में स्थिरता आई। पत्नी जो अब तक मुझे एक खाना-बदोश के रूप में देखती रही सन्तुष्ट-सी जान पड़ने लगी। घर-गृहस्थी की ज़िम्मेदारियों ने मुझे मजबूर कर दिया कि मैं एक जगह टिककर रहूँ।

कल्पना न थी कि इस दौरान में भी कुछ लिखा जायेगा पर ज़िन्दगी कुछ इतनी अजीबो-ग़रीब रही है कि हमेशा कुछ-न-कुछ लिखने के लिये बाध्य होना पड़ा है।

आज के युग में इनसानियत और ईमान के रास्ते पर चलकर समाज से टक्कर लेना उतना ही मुश्किल हो गया है जितना एक नाविक के लिये साधारण नाव से सागर को पार करना। समाज में इतनी उथल-पुथल है कि सादगी को निभाना सब के वश की बात नहीं। फिर भी यह महसूस करता हूँ कि इनसानियत और ईमान भले ही जीते जी सुख एवं वैभव न प्रदान कर सकें किन्तु ऐसे जीवन की कीमत मृत्यु के बाद मालूम होती है।

जो ऐसे व्यक्तियों के जीवन में आकर भी उन्हें भूल जाते हैं उन्हें भी कभी-न-कभी याद आ ही जाती है। जो सुख और वैभव का परित्याग कर इनसानियत की ज़िन्दगी बसर करते हैं उन्हें संसार भले ही पागल समझे पर सच्चे इनसान वही हैं।

आज स्वार्थ और पाप की विजय हो रही है——हर व्यक्ति दूसरे का हक़ छीन स्वयं हड़प करना चाहता है किन्तु यह कब तक चलेगा। एक-न-एक दिन इनसानियत की विजय होकर रहेगी।

अन्त में मैं अपने जीवन में आये उन पात्र-पात्रिकाओं के प्रति आभार प्रदर्शन करूँगा जिनके आधार पर इस उपन्यास की नींव पड़ी है। अन्त में यही कहूँगा कि यह उपन्यास जितना ही काल्पनिक है उतना ही यथार्थ भी पर किसी को हक़ नहीं कि वह इसे अपनी कहानी समझे।

यशोविमलानन्द

अपूर्ण को न पूर्ण कर सका कभी,
अभाव को न घाव भर सका कभी,
हजार हार से न डर सका कभी,

मनुष्य की

मनुष्यता

विचित्र है !

'बच्चन'

: १ :

जिस समय उमाकान्त को नौकरी के इण्टरव्यू का बुलावा आया उसे आश्चर्य हो रहा था और उसके परिवार वालों को खुशी। उमाकान्त निर्णय नहीं कर पा रहा था कि उसे इण्टरव्यू के लिये जाना भी चाहिये या नहीं पर परिवार वालों, मित्रों को एक राय थी कि उसे अवश्य जाना चाहिये। जीवन में आये इस स्वर्ण अवसर को खोना बुद्धिमानी नहीं।

नौकरी करना या कमाना उमाकान्त के लिये कोई नई बात नहीं थी बल्कि वह तो छोटी उम्र से ही धनोपार्जन करने लगा था फिर भी उसके जीवन में स्थिरता का अभाव था और परिवार वालों का ऐसा ख्याल था कि यह स्थिरता उसे पक्की नौकरी में ही प्राप्त हो सकेगी। पत्नी भी नहीं चाहती थी कि उसका पति एक खानाबदोश की सी ज़िन्दगी बसर करे। लेकिन उमाकान्त को ये सब कोई फ़िक्रें नहीं सता रही थीं। वह कुछ सोच रहा था तो सिर्फ़ इतना ही कि उसके लिये लखनऊ छोड़ना संभव है अथवा नहीं। अंत में वह यह जानते हुए भी, कि उसके लिये लखनऊ छोड़ना उतना ही मुश्किल है जितना किसी पक्षी के लिये अपने बसेरे का परित्याग करना, वह दिल्ली जाने वाली गाड़ी पर बैठ गया।

वह जानता था लखनऊ छोड़ने में उसे गहरी वेदना पहुँचेगी फिर भी किसी के सुख के लिये वह अपना सर्वस्व त्याग सकता था। सुधा को वह जितना ही अधिक चाहता था वह उससे उतना ही दूर हो चुकी थी। विवाह के बन्धन ने एक दूसरे को नदी के दो किनारों के समान दूर कर दिया था और वह उसी के सुख के लिये अपने खानाबदोशी के जीवन की लम्बी आय को भी भुला सकता था। अपनी वेदनाओं के आगे किसी का सुख उसके लिये अधिक महत्त्व की बात थी।

फिर उसका भी अपना कुछ कर्त्तव्य था, उस कर्त्तव्य का निर्वाह करना उसका धर्म। बीबी-बच्चों को सुख प्रदान करना, उनके प्रति अपनी

ज़िम्मेदारी का अनुभव करना यह भी उसके लिये महत्त्व की बात थी। दो किश्तियों पर पैर रखने वाला यदि डूबता नहीं तो लड़खड़ाता तो अवश्य ही रहता है। उसे आशंका रहती है किसी किश्ती पर भार अधिक पड़ने से दूसरी किश्ती बिना नाविक के न रह जाये।

गहन अंधकार को चीरती हुई गाड़ी वेग के साथ बढ़ी जा रही थी। सैकिण्ड क्लास कम्पार्टमैण्ट में सिर्फ बैठने लायक जगह मिल सकी थी इसलिये सारी रात जागकर ही गुजारनी थी। उसने मन-बहलाव के अभिप्राय से हिन्दी की एक पत्रिका को उलटना शुरू कर दिया किन्तु उसके आगे तो लखनऊ का स्टेशन नाच रहा था। धीरे-धीरे वह अपनी कल्पनाओं में खो गया। मैगज़ीन जाँघों पर खुली पड़ी थी, उसका सर खिड़की से टिका हुआ था। शीतल वायु के झोंकों में उसके केश लहरा रहे थे।

उसके आगे सुधा की तस्वीर खिंच आई––'मैं अब विवाहित हूँ, मुझ पर किसी और का अधिकार हो चुका है। तुम्हारा विवाह हो चुका है, तुम्हारी अपनी ज़िम्मेदारियाँ निर्धारित हो चुकी हैं। दोनों के मार्ग और फर्ज़ जुदा हैं। अपने-अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह में ही एक दूसरे की खूबसूरती है। यदि वास्तव में तुम मुझे चाहते हो तो मेरे और अपने दोनों के सुख के लिये एक दूसरे को भुलाना ही पड़ेगा।'

वह सोच रहा था सुधा ठीक कहती है। उसके जीवन की खुशी उसका पति है। उसका प्यार भी केवल उसी के लिये है। प्यार किसी का सुख चाहता है और उस सुख के लिये अपना सब कुछ उत्सर्ग करना पड़ता है। जहाँ प्यार में उत्सर्ग की भावना नहीं होती वहाँ कृत्रिमता होती है।

संसार में पति-पत्नी का रिश्ता एक अटूट रिश्ता है। इसके प्रति विश्वास-घात करने वाले को समाज कभी ऊँची दृष्टि से नहीं देखता। अग्नि की परिक्रमा कर इस रिश्ते को कायम करने की प्रतिज्ञा की जाती है इसलिये इस सम्बन्ध को तोड़ने वाले को समाज भले ही क्षमा करदे किन्तु अपनी आत्मा कभी सन्तुष्ट नहीं रह पाती। मनुष्य सोचता रहता है––उसने अपराध किया है और इस अपराध का दण्ड साधारण नहीं।

जो भी उमाकान्त और सुधा को बचपन से जानते हैं उन्हें अच्छी तरह से मालूम है कि वह एक दूसरे से बहुत प्यार करते थे। उनका प्यार

जीवन में हमेशा के लिये एक हो जाने को था किन्तु फिर भी वह एक न हो सके। मनुष्य परिस्थितियों का गुलाम होता है, वह चाहकर भी बहुत कुछ नहीं पाता। परिस्थितियों ने सुधा और उमाकान्त को एक नहीं होने दिया और वह हमेशा के लिये जुदा हो गये। शरीर दो थे किन्तु आत्मा एक। समाज में जब तक रहना है वहाँ आत्मा का महत्त्व नहीं शरीर का महत्त्व है। समाज लोगों के शरीर पर अधिकार चाहता है आत्मा पर नहीं इसलिये समाज की खुशी के लिये अपने शरीर को समाज के हाथों ही सौंपना पड़ता है।

उमाकान्त इन्हीं विचारों में खोया था कि किसी पैर के झटके ने उसे चौंका दिया। उसने आँखें खोलीं। उसकी बर्थ पर लेटी महिला के पैर उसकी जाँघ से टकरा रहे थे। पत्रिका के पन्ने हवा के झोंके में उड़ रहे थे। कम्पार्टमैण्ट के प्रायः सभी मुसाफ़िर सो रहे थे। जिस बर्थ पर उमाकान्त बैठा था उस पर केवल तीन व्यक्ति थे। एक अधेड़-से सज्जन जो कम्पार्टमैण्ट की दीवार के सहारे टिके खुर्राटे ले रहे थे। दूसरी वह महिला उन अधेड़ सज्जन की गोद में सर रखे लेटी थी। उसका पैर उमाकान्त की तरफ़ था और सबसे कोने में दरवाज़े के पास वह स्वयं बैठा था।

अधेड़ सज्जन की अवस्था पचास के लगभग रही होगी। चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े दाग़ थे। शरीर काफी भारी-भरकम। उनके पहनाव से स्पष्ट था कि वह कोई धनी पुरुष हैं। उनका एक हाथ स्त्री के सर पर था।

स्त्री बहुत सुन्दर तो न थी फिर भी उनमें एक आकर्षण था। उसकी वय पच्चीस की रही होगी। उमाकान्त ने एक बार अपनी कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा। डेढ़ का समय था। चारों तरफ़ ट्रेन के बाहर काली रात फैली हुई थी। उसने उस स्त्री की ओर देखा, उसकी बन्द पुतलियाँ नाच रही थीं। वह उसके पैर से दूर होने के लिये थोड़ा और किनारे हट कर बैठ गया। वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि यह स्त्री उस अधेड़ सज्जन की स्त्री है अथवा पुत्री किन्तु जिस ढंग से वह सज्जन उसे अपनाये हुए थे उससे यही आभास होता था कि यह उनकी पत्नी है।

सहसा स्त्री ने एक ज़ोर की अँगड़ाई ली और अपने पैरों को भी अधिक

फैला दिया। इस समय उसके दोनों पैर उमाकान्त की गोद में रखी पत्रिका के ऊपर थे। वह घबड़ा-सा उठा। यदि कोई देख लें तो क्या सोचेगा। वह स्त्री का पैर हटाये भी तो कैसे ? तभी उसकी नजर स्त्री के चेहरे पर पड़ी जो अपनी आँखों को खोलकर फिर बन्द कर रही थी। उमाकान्त जोर से खाँसा जिसके ऐवज में उसकी अँगुलियाँ नाच उठीं। वह घबड़ा गया। उसने हिम्मत बाँधी और अपने हाथ से पकड़ उसके पैर को दूर हटाना चाहा किन्तु वह पैर जमे हुए थे। उमाकान्त के शरीर से पसीना छूटने लगा। उसने अपने हाथ खींच लिये। वह उठकर भागना चाहता था पर उठ नहीं पा रहा था तभी उन अधेड़ सज्जन को एक जोर की छींक आई और इसके पूर्व कि उनकी आँखें खुलें उसी स्त्री ने अपने पैर सिमेट लिये।

अधेड़ सज्जन ने एक जोर की जम्हाई ली, एक बार अपने खुरदुरे हाथों को स्त्री के सर पर फेरा और फिर उमाकान्त की ओर देखने लगे।

'कहाँ जा रहे हैं ?'—अधेड़ सज्जन ने प्रश्न किया !

'दिल्ली !'—उमाकान्त ने छोटा सा उत्तर दिया।

'अभी तो चार घंटे का सफर है।'

"जी हाँ।'

'तो क्या सारी रात जागकर काट देंगे ?'

'और कर भी क्या सकता हूँ, बैठने को जगह मिल गई है यही क्या कुछ कम है।'

'बात तो ठीक कहते हैं, आजकल गाड़ियों में भीड़ भी कुछ ज्यादा होती है।'

'भीड़ तो होती ही है लेकिन महिलायें भी पुरुषों के डिब्बे में बैठ जाती हैं इससे कुछ जगह और घिर जाती है। स्त्रियों के डिब्बे खाली पड़े रहते हैं।'

अधेड़ सज्जन उमाकान्त के इस कटाक्ष को समझ गये और बोले—'साहब रात के सफर का मामला होता है, कहाँ औरतों को अकेला छोड़ा जाय आप ही बतायें।'

'यह भी ठीक ही कहते हैं आप।'—बात को वहीं समाप्त करने के

अभिप्राय से उमाकान्त ने कहा ।

कुछ देर के लिए डिब्बे में पूर्ण शान्त वातावरण छा गया तभी उमाकान्त ने शान्ति को भंग करते हुए कहा—

'शायद पुत्री को छोड़ने दिल्ली जा रहे हैं आप ?'

'वाह साहब' यह मेरी पुत्री नहीं पत्नी है ।' उन सज्जन ने कुछ रुष्ट होते हुए कहा और उनके हाथ स्त्री के केश पर आ गये । स्त्री ने इसी बीच एक गहरी साँस ली ।

'क्षमा कीजियेगा मेरी इस भद्दी भूल के लिये ।'

उसकी बात का उत्तर दिये बगैर ही उन सज्जन ने स्त्री की ओर संकेत करके कहा—'सो रही हो चम्पा ?'

'सो चुकी, अब आप सो लें ।'—वह स्त्री उठ बैठी और अपने अस्त-व्यस्त कपड़े ठीक करने लगी ।

'मैं तो सो चुका, तुम और सो लो ।'

'नहीं जी, जितनी नींद आयेगी उतना ही तो सोऊँगी ।'—उसने कुछ रूखे स्वर में कहा ।

'भूख तो नहीं लगी है ?"

'नहीं !'—वही रूखा-सा उत्तर ।

'पानी है ?'

'जी नहीं ।'

'अगले स्टेशन पर दूध खरीद दूँ ?'

'एक बार कह दिया कुछ भी नहीं ।'

इन पति-पत्नी की वार्ता पर उमाकान्त को कुछ हँसी-सी आई । पति खुशामद किये जा रहा है और पत्नी उसे टके-से जवाब दे रही है । कुछ देर बैठने के बाद स्त्री पुनः लेट गई । उसने एक बार प्यार भरी आँखों से उमाकान्त की ओर देखा, एक गहरी साँस ली और फिर आँखें बन्द कर लीं । वह सज्जन उतरा-सा चेहरा लिये बैठे थे तभी उनकी उदासी को दूर करने के अभिप्राय से उमाकान्त ने कहा—'दिल्ली में ही रहते हैं आप ?'

'जी, वहीं एक निवाड़ बुनने का कारखाना खोल रखा है ।'

'तब तो अच्छी आय हो जाती होगी ।'

'आय क्या, इनकमटैक्स वाले मारे डालते हैं।'

'बच्चे आदि भी हैं ?'

'नहीं साहब, यही तो रोना है। तीन स्त्रियाँ बिना बच्चों के मर गई। सन्तान भी भाग्य से होती है।'

'यह चौथी शादी की है आपने। शायद हाल ही में।'

'नहीं, दो साल हुए।'

'अच्छा है पति-पत्नी चैन से रहें यही क्या कम है।'

'फिर भी बिना सन्तान के सब धन-दौलत बेकार है।'

'किसी की सन्तान गोद ले लें।'

'कहते तो आप ठीक हैं, किन्तु अपने अपने ही होते हैं।'

'किसी डाक्टर आदि की राय ली होती।'

'अजी साहब, आप नये खयालात के लोग भी अजीब बातें करते हैं, सन्तान भी कोई डाक्टरों की देन है। यह सब तो भगवान की माया है। पूर्व-जन्म के कर्मों का फल है।'—और वह सज्जन एक लम्बी साँस के साथ पुनः दीवार से टिक गये जैसे अब इस विषय पर वह कुछ नहीं कहना-सुनना चाहते।

उमाकान्त भी खिड़की से टिक सोचने लगा—पुरुष कितना स्वार्थी है। वह अपनी कमज़ोरियों का ज़िम्मेदार भी ईश्वर को ठहराता है। अपने स्वार्थ के लिये क्या कुछ नहीं करता। इन पचास वर्ष के सज्जन को क्या अधिकार है कि पच्चीस साल की स्त्री को अपनी पत्नी बनायें, पर उनके पास पैसा है इसलिये सब कुछ क्षम्य है। स्त्री की आकांक्षाओं की कितनी सन्तुष्टि है यह दोनों व्यक्तियों के व्यवहार से स्पष्ट है। ऐसी दशा में यदि अपने अरमानों की भूख मिटाने के लिये स्त्री गिरती है तो समाज उस पर अँगुलियाँ उठाता है पर ऐसे स्वार्थी पुरुषों के लिये समाज में कोई दण्ड नहीं। आज समाज को जीतने के लिये हृदय और त्याग नहीं केवल धन चाहिये। कोई धनी पुरुष अपने सुख के लिये वेश्या के यहाँ जाता है तो उसे रईस-दिल कहा जाता है। यदि कोई साधारण पुरुष अपना दुःख भुलाने के लिये तो उसे नीच-पातकी। अब उसकी समझ में आया वह स्त्री क्यों उसे पैर मार रही थी। उसने अपने बचपन में अनेक कल्पनायें की होंगी किन्तु

उसकी सारी कल्पनायें एक अधेड़ व्यक्ति के पास आ समाप्त होती थीं। उसके माता-पिता ने केवल यही सोचकर उसका विवाह किया होगा कि धनी परिवार में जा वह खुश रहेगी किन्तु उन्होंने यह न सोचा होगा कि इसकी भी अपनी आत्मा है। केवल शरीर का सुख ही सुख नहीं। सच्चा सुख आत्मा की सन्तुष्टि में है। वह इन्हीं विचारों में खोया नींद की गोद में खो गया। सुबह जब उसकी आँख खुली शाहदरा के पास गाड़ी आ चुकी थी। सारे मुसाफ़िर जाग अपना-अपना सामान ठीक कर रहे थे। उमाकान्त ने एक बार करुणापूर्ण नेत्रों से उस स्त्री की ओर देखा जो भूखी आँखों से उसकी ओर देख रही थी और जाकर दरवाज़े के पास खड़ा हो गया।

: २ :

कुली-कुली के कोलाहल से सारा स्टेशन गूँज उठा। दिल्ली का विशाल प्लेटफार्म सुन्दर प्रभात में खिल-सा गया था। उमाकान्त ने भी एक कुली को आवाज़ दी और वह पलक मारते उसका सामान अन्दर से प्लेटफार्म पर ले आया।

'किधर चलना है बाबूजी?'

'सैकिण्ड क्लास वेटिंग रूम में।'—उमाकान्त ने घड़ी पर नज़र डाली। अभी केवल पौने छः बजे थे। उसका इण्टरव्यू ग्यारह बजे था अतएव उसने निश्चय किया वेटिंग रूम में ही ठहरेगा और ठीक से नहा-धोकर सीधे इण्टरव्यू के स्थल पर जायेगा। कुली झट सूटकेस और होलडाल सर पर लाद वेटिंग रूम की तरफ चल पड़ा। उमाकान्त उसके पीछे-पीछे चल रहा था। कुली ने वेटिंग रूम में सामान रख दिया, बैरे ने एक ज़ोर का सलाम मारा। उमाकान्त ने एक अठन्नी कुली के हाथ पर रख दी। वह खुशी-खुशी चला गया। बैरा सामान सम्हाल रहा था।

'चाय ले आओ।'—उमाकान्त ने बैरे से कहा।

'बहुत अच्छा हुजूर।'—और बैरा चाय लेने चला गया।

उमाकान्त ने सिगरेट जलाई और एक कुर्सी पर बैठ चाय की इन्तज़ारी करने लगा। सिगरेट के कश के साथ वह पुनः किसी कल्पना और स्मृति में खो गया।

कल्पना वह शक्ति है जो मनुष्य के प्रत्येक अनुभव में कार्य करती रहती है। वह शक्ति पुराने अनुभवों के आधार पर मनुष्य को एक नवीन विचार-सृष्टि के निर्माण की प्रेरणा प्रदान करती है। उमाकान्त अतीत के आधार पर एक नवीन सृष्टि के निर्माण की कल्पना कर रहा था। जीवन की बीती घटनाओं को इस प्रकार पिरोने की कोशिश कर रहा था कि वह एक नवीन स्वरूप या एक आदर्श बन सकें। फिर उसके सामने कम्पार्टमैण्ट में पति-पत्नी का जोड़े का दृश्य दिखलाई पड़ने लगता। वह सोचता सारे फ़साद की जड़ यह समाज है। यह समाज ज़िन्दादिलों का नहीं बुज़दिलों का है। यदि इस समाज को प्रभुतापरस्त कहा जाये तो भी ठीक ही है। यहाँ गरीबों और कमजोरों को सताया जाता है। धनियों और बलवानों की खुशामद की जाती है। उमाकान्त इन्हीं सब विचारों में खोया था कि बैरे ने आवाज़ दी—'हुज़ूर, चाय आ गई।'

उमाकान्त चौंक पड़ा, उसने देखा वेटिंग रूम के बैरे के पीछे एक होटल वाला बैरा चाय लिये खड़ा है। उसे होश आया—

'यहीं रख दो भाई।'

बैरे ने चाय प्याले में ढाल दी—'हुज़ूर, चीनी दो चमचे।'

'हाँ, दो चमचे।'—उसे अपने आप पर खीझ हुई वह यहाँ इण्टरव्यू के लिये आया है अथवा इन विचारों की दुनिया में खोने के लिये। उसे चाहिये था—कुछ पढ़ना-लिखना। जाने इण्टरव्यू में क्या कुछ पूछा जाये और वह है कि उसने आज का अखबार तक नहीं पढ़ा। उसने झट एक चवन्नी बैरे के हाथ में दी और कहा—'आज का अख़बार ले आओ।'

उमाकान्त चाय पीकर नहाने चला गया। नहा-धोकर जब लौटा उसकी अटैची पर अखबार रखा था। उसने घड़ी की ओर देखा आठ बज रहे थे। कपड़े आदि बदल उसने अख़बार पर नज़र दौड़ाई। आज के अख़बार में बहुत सी नई खबरें थीं। उसे ऐसा लगा जैसे आज ही के अख़बार पर उससे प्रश्न किये जायेंगे। उसने बैरे को सामान सहेजा, उसके हाथ पर

एक रुपये का नोट रखा और चलने को उद्यत होने लगा तभी बैरे ने टोककर कहा--'साहब' जूते में हुक्म हो तो पालिश भी करवा दूँ।'

उसने जूते की ओर नजर डाली वह धूल से भरा था। वह सोच रहा था बैरा आखिर उसका इतना ध्यान क्यों रख रहा था किन्तु उसे निष्कर्ष निकालते देर न लगी कि यह उसकी नहीं उसके रुपये की महिमा थी। उसने झट उत्तर दिया--'करवा दो।'--एक चवन्नी पुनः उसके हाथ पर रख दी। पाँच मिनट में चमचमाता जूता उसके सामने था। उसने जूता पहना।

'अब जा रहा हूँ ख्याल रखना।'

'कोई फ़िक्र न करें। शाम के छः बजे तक मेरी ड्यूटी है। अगर आप उस समय तक नहीं आये तो अपने साथी को सहेज जाऊँगा।'

उमाकान्त बिना कोई उत्तर दिये वेटिंग रूम से बाहर हो गया। वह इण्टरव्यू की तरफ से कुछ इतना बेफ़िक्र था कि उसके बारे में कुछ सोचना उसके लिये भारस्वरूप था। उसने ताँगा पकड़ा और चाँदनी चौक, अजमेरी गेट होता कनाट सर्कस पहुँच गया। क्वालिटी में फिर चाय पी और इण्टरव्यू के स्थान के लिये चल पड़ा।

वहाँ पहुँचकर उसने देखा लगभग पन्द्रह व्यक्ति विभिन्न वेश-भूषा में सुसज्जित इण्टरव्यू की इन्तजारी कर रहे थे। कोई उम्दा टाई और शार्कस्किन के सूट में था। कोई दूध के से उजले खद्दर में। कोई पी-एच० डी० था, कोई डबल एम० ए०। एक बार उसने अपनी ओर देखा वही खद्दर की बादामी पतलून और सफेद बुश-शर्ट। उसके पास केवल एम० ए० की डिग्री थी। उसे ऐसा महसूस होने लगा जैसे इन व्यक्तियों के बीच उसका चुनाव असंभव है। पक्की नौकरी है, कोई खिलवाड़ नहीं। अच्छा वेतन और सिर्फ एक पोस्ट। एक बार उसने सोचा--कोई लाभ नहीं लौट चले मगर किसी आन्तरिक शक्ति ने उसे फिर बाँधकर वहीं रोक लिया।

चपरासी आकर एक-एक को बुलाने लगा। एक बजे उसका नाम आया और वह इण्टरव्यू हॉल में था। एक से एक काबिल व्यक्ति इण्टरव्यू बोर्ड में थे। उसने कमरे में प्रवेश करते ही नमस्ते किया। उसे एक कुर्सी पर बैठने का आदेश मिला। वह बैठ गया। प्रश्नों की झड़ियाँ लग गई और वह तत्परतापूर्वक उनके उत्तर देने लगा।

उसे ऐसा विश्वास होने लगा जैसे सभी उसके उत्तर से सन्तुष्ट जान पड़ रहे हैं अतएव वह और भी निर्भीकतापूर्वक उत्तर देने को तत्पर हो गया। इसी बीच एक कॉंग्रेसी सज्जन जो स्वभाव से साहित्य एवं कला-प्रेमी मालूम होते थे उससे पूछ बैठे—

'क्या आप विवाहित हैं ?'

'जी !'

'क्या आपने कभी किसी से प्रेम किया है ?'

'जी !'

'फिर विवाह और प्रेम के सम्बन्ध का निर्वाह आप कैसे कर रहे हैं ? क्या आपने उसी स्त्री से विवाह किया है जिसे आप चाहते थे ?'

'मेरा विवाह किसी और से हुआ है किन्तु प्रेम के सम्बन्ध का निर्वाह उसकी पवित्रता से और विवाह का निर्वाह कर्त्तव्य से कर रहा हूँ।'

वह सज्जन आश्चर्य से उसकी ओर देख रहे थे, उसकी निर्भीकता पर मुग्ध से जान पड़ रहे थे।

'आप पढ़ाने का कार्य कर सकेंगे ?'

'अवश्य !'

'क्या आप बता सकेंगे कि अच्छे शिक्षक के लिये किन गुणों का होना आवश्यक है ?'

'ज्ञान, व्यक्तित्व और अपने मनोभावों को प्रकट करने की क्षमता।'

'क्या चरित्र की महत्ता पर आपका विश्वास नहीं ?'

'व्यक्तित्व के अन्तर्गत शरीर, मन और चरित्र तीनों आ जाते हैं।'

सभी सदस्यगणों के चेहरे पर एक मुस्कान-सी दौड़ गई। कुछ क्षण के लिये वहाँ शान्ति विराज गई। अध्यक्ष ने कहा—'आपको काफी तकलीफ़ दी, अब आप जा सकते हैं।' उमाकान्त ने अभिवादन किया और हॉल से बाहर हो गया। वहाँ से वह बिना किसी से कुछ कहे-सुने सीधा होटल पहुँचा। उसे ज़ोरों की भूख लग आई थी।

बैरे ने उसके सामने मेन्यू रख दिया। 'एक प्लेट राइस, एक चिकेन करी, सलाद और चपातियाँ।' कह रेस्तराँ की तड़क-भड़क देखने लगा। उसे थोड़ी ही दूर पर बैठे एक सज्जन नजर आये जो उसे घूर-घूरकर देख

रहे थे । उसे लगा जैसे वह परिचित-से हैं । वह भी उनकी तरफ एकटक देखने लगा । कुछ क्षण के बाद वह सज्जन उठकर उसके पास आ गये ।

'पहचाना आपने ?'

'ऐसा ध्यान आ रहा है कहीं देखा है आपको ।'

'लखनऊ में देखा है ।'

'ऐसा ही मेरा अनुमान है ।'

'जी चक्रवर्ती के साथ आपके घर आया था ।'

'जी हाँ, याद आ गया उस समय आप किसी मिल खोलने की योजना में व्यस्त थे शायद उसी के शेयर के सम्बन्ध में आये थे ।

'बिलकुल ठीक फ़र्माया आपने । मुज़फ्फरनगर में एक शुगर फैक्ट्री खोलने की बात थी ।'

'खुल गई फैक्ट्री ?'

'अजी साहब, कहाँ खुली, कुछ लोगों का ऐसा विश्वास उठ गया है कि वह शेयर तक खरीदने में हिचकते हैं ।'

'लेकिन उस समय तक आपने तीन-चार सौ शेयर तो बेच लिये थे ।'

'सौ-सौ रुपये के तीन-चार सौ शेयर में होता भी क्या है । एक फैक्ट्री के लिये कम-से-कम पाँच लाख रुपये तो चाहियें ही ।'

'तो उन रुपयों का क्या किया आपने ?'

'किया क्या किसी ऐसी योजना की खोज में हूँ जो इतने रुपयों से ही शेयर खरीदने वालों को फ़ायदा पहुँच सके ।'

'मैंने भी शायद सौ-सौ रुपये के दो शेयर खरीदे थे ।'

'जी हाँ, बहुत अच्छी तरह याद है । वह किसी बैंक से भी अधिक सुरक्षित हैं । अभी तो एक ही वर्ष हुआ है । लोग दस-दस साल तक इन्तज़ार करते हैं ।'

'तो अभी कितने दिनों तक इन्तज़ारी करनी होगी ।'

'बिजनेस में साहब इन्तज़ारी और पेशेन्स ही सबसे बड़ी चीज़ होती है इसीलिये व्यापार करना हरएक के वश की बात नहीं । लेकिन एक बार जब रिटर्न आने लगता है तो फिर सारे दुःख भूल जाते हैं । मैं तो आपसे कहूँगा दो-चार शेयर और भी ख़रीद लें ।'

'माफ़ कीजियेगा जितने ख़रीदे हैं वही क्या कम हैं।'

'आप शायद घबड़ा गये।'

'घबड़ाने की कोई बात नहीं, मैं नौकरीपेशा आदमी हूँ, वैसे भी मेरी रुचि बिजनेस की ओर नहीं है।'

बैरे ने मेज़ पर काँटे-चम्मच के बीच उसका खाना सजा दिया।' 'आप भी कुछ खायेंगे?'—उमाकान्त ने उन सज्जन से प्रश्न किया।

'जी नहीं, अभी-अभी खाकर उठा हूँ, मुझे अभी आवश्यक कार्य से एक जगह जाना है, इजाज़त हो तो जाऊँ।'

'अवश्य जायें।'—वह खाने लगा और उक्त सज्जन होटल से बाहर हो गये।

उमाकान्त मन-ही-मन हँसा। संसार में ऐसे भी व्यक्तियों की कमी नहीं जो अपनी तड़क-भड़क में सरेआम लोगों की आँखों में धूल झोंकते हैं। यह सज्जन हज़ारों का शेयर बेचते हैं और मौज करते हैं। यह नहीं जानते उनका यह व्यापार थोड़े ही दिनों का है कब तक लोगों की नज़र से इस तरह बच सकेंगे। किसी न किसी दिन ऐसे व्यक्तियों का भेद खुलता ही है। लोगों के शेयर के पैसों पर दिल्ली के होटलों की सैर कर रहे हैं, जहाँ कोई रोकने को उद्यत होता है उठकर चल देते हैं। बिजनेस से बढ़कर भी यदि कोई व्यापार है तो वह है चार सौ बीस। इस व्यापार में दक्ष होने वाले के चेहरे पर शिकन तक नहीं आती। यह ऐसा क्या सोच-समझकर करते हैं—केवल शरीर के सुख के लिये। समाज में झूठी प्रतिष्ठा और मान के लिये दूसरों का गला घोंटने में भी जिन्हें संकोच नहीं होता। लेकिन इनके आगे भी कोई मजबूरी ही होगी।

खाना समाप्त कर, होटल का बिल चुका उसने कनाट-सर्कस के कई चक्कर लगाये और मुँह में पान दबा फौहारे जाने वाले ऑटो रिक्शा पर सवार हो गया। चाँदनी चौक में बीवी और बच्ची के लिये दो-चार चीज़ें खरीद सीधा स्टेशन पहुँचा। वेटिंग रूम से सामान ले लखनऊ जाने वाली गाड़ी पर सवार हो गया। उसका मन उड़कर लखनऊ पहुँचने को हो रहा था।

: ३ :

मृत्यु अनिवार्य है यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है किन्तु मृत्यु के उपरान्त क्या होता है यह कोई नहीं जानता। जिनके पास करोड़ों की दौलत है वह भी मरते हैं और जिनके पास तन ढकने के लिये वस्त्र नहीं वह भी अमर होकर नहीं आते। मृत्यु ही वह शक्ति है जिससे कोई नहीं जीत सका। फिर भी ऐसों का अभाव नहीं जो मृत्यु से भय नहीं खाते। मृत्यु उनके लिये खिलौना है वह मृत्यु के लिये नहीं। मौत का भय केवल उनको है जिन्हें अपने जीवन से मोह है। जिनके जीवन में कोई रस नहीं, जिनकी ज़िन्दगी स्वतः भार बन गई है उनके लिये मृत्यु से बढ़कर अधिक शान्ति कहीं अन्यत्र नहीं। कुछ इन दोनों से परे हैं। उन्हें तो वास्तविक जीवन वहीं दिखलाई पड़ता है जहाँ संघर्ष हो। जीवन भार ही नहीं वरन् बोझ बन गया हो फिर भी वह जीना चाहते हैं। उन्हें जीवन का सच्चा सुख, कर्त्तव्य, ज्ञान, केवल इसी जीने में प्राप्त होता है।

शायद उमाकान्त भी इसी दलील का कायल था तभी वह अपने जीवन का सर्वस्व खोकर भी जी रहा था। उसके जीवन की सुनहली घड़ियाँ हमेशा के लिये टूट चुकी थीं फिर भी वह जीना चाहता था। इसलिये नहीं कि उसे मौत से भय था बल्कि इसलिये कि उसे डर था कहीं उसकी कमज़ोरी उसके चरित्र पर धब्बा न बन जाये और मृत्यु के उपरान्त भी समाज उस पर अँगुली उठाता रहे। एक बार आत्मघात का विचार उसके मन में आया—किन्तु किसी अज्ञात शक्ति ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। उसने निश्चय कर लिया वह इस कमज़ोरी का शिकार कभी न बनेगा। यह जीवन की सबसे बड़ी कमज़ोरी है, इससे बढ़कर कायरता अन्य कोई नहीं। उसके जीवन में शान्ति नहीं फिर भी वह जीना चाहता है।

वह घर से पाँच-दस कदम आगे ही गया था कि तारवाले ने उसे रोक दिया—'बाबूजी, आपका तार !'

'मेरा तार !'—उमाकान्त चौंक-सा पड़ा।

'जी आपका तार, आप ही का नाम उमाकान्त बाबू है न ?'

'हाँ !'—कह उसने तार ले लिया। उसके दस्तख़त पा तार वाला चला गया।

उमाकान्त ने तार खोला—'आपका चुनाव हो गया है, एक सप्ताह के अन्दर आप अपना पद सम्हाल लें।'

उमाकान्त को आश्चर्य हो रहा था और साथ ही खुशी। वह इण्टरव्यू में सफल हुआ। शायद ईश्वर चाहता है वह लखनऊ छोड़ दे तभी इतने बड़े-बड़े धुरन्धरों के बीच भी उसका चुनाव हो गया। वह चाहता था घर वापस लौट यह खुशखबरी सुनाये किन्तु उसने निश्चय किया लौटकर ही बतायेगा। शीघ्र ही उसकी खुशी चिन्ता में बदल गई। वह कुछ सोचने लगा और उसके पैर हज़रतगंज की तरफ बढ़ने लगे। उसका इरादा कॉफ़ी हाउस जाने का था।

हज़रतगंज में वह खूबी भले ही न हो जो बंबई के मेरिन ड्राइव अथवा दिल्ली के कनाट सर्कस में है, किन्तु जो शान लखनऊ के इस बाज़ार की है वह दोनों में से किसी की नहीं। हज़रतगंज का अपना अलग ही रंग है जिसे पाने के लिये बम्बई और दिल्ली दोनों को लखनऊ बनना पड़ेगा।

कॉफ़ी के दो प्याले समाप्त कर जैसे ही उमाकान्त बाहर निकला ठीक उसके सामने एक कार आकर रुक गई। उसमें से आधुनिक फैशन में सजी हुए एक महिला निकली और उसके पीछे खूबसूरत सूट में सुसज्जित एक पुरुष। उमाकान्त चौंक पड़ा—अपने पति के साथ सुधा थी। उसके हाथ की अधजली सिगरेट गिर पड़ी। उसके पैर आगे बढ़े किन्तु वह सहम गया और दूसरी तरफ़ चल पड़ा। तभी सुधा के पति ने तेज़ी से आगे बढ़ उसे रोकते हुए कहा—'वाह भाई साहब हमें देख आप चोरी से इस तरह भागे गोया हम लोग कॉफ़ी पीकर ही रहेंगे—चलिये, आपको सुधा बुला रही है।'

वह चौंक पड़ा—'आप !'

'ऐसा बनते हैं जैसे देखा ही नहीं। आइये।'

'कहिये चोरी से भागने की क्या ज़रूरत थी ?'—सुधा ने प्रश्न किया।

'मैं कहीं जा रहा था।'

'हर व्यक्ति कहीं जाता है, यह कौनसी नई बात है !'—सुधा ने मुस्कराते हुए कहा।

'आइये चलें कॉफ़ी पीलें।'—सुधा के पति ने कहा।

'मैंने अभी पी है।'

'दुबारा कॉफ़ी पीने से बदहज़मी नहीं हो जायेगी।'—सुधा ने कहा।

'आइये चलें।'—सुधा के पति सुधा का हाथ पकड़ कॉफ़ी हाउस की तरफ बढ़े। सुधा ने मुड़कर देखा सर झुकाये उनके पीछे उमाकान्त था।

'आज की कॉफ़ी मेरी ओर से है!'—उमाकान्त ने कहा।

'क्यों कोई खुशखबरी है?'—सुधा ने प्रश्न किया।'

'खुशखबरी ही समझ लो!'

'क्यों?'—सुधा ने कुछ उत्सुक होते हुए कहा।

'मैं लखनऊ छोड़ रहा हूँ प्रेम बाबू।'—सुधा के पति की ओर सम्बोधित करते हुए उमाकान्त ने कहा।

'क्यों?'—सुधा के पति ने प्रश्न किया।

'मुझे पक्की नौकरी मिल गई है।'—उसने तार उनके हाथ पर रख दिया।

'गुड, काँग्रेचुलेशन्स! क्या काम है, कितना वेतन है?'

'वेतन चार सौ रुपये और काम पढ़ाने का।'

'दिल्ली में ही।'

'जी हाँ, दिल्ली के पास।'

'कब तक जाओगे?'—तनिक गम्भीर होते हुए सुधा ने पूछा।

'तीन-चार दिन में।'—उसकी आँखें उठीं और झुक गईं।

'फिर आपसे बहुत दिनों में मुलाकात हुआ करेगी?'—प्रेमकान्त ने प्रश्न किया।

'शायद न भी हो।'—उसने बनावटी हँसी हँसते हुए कहा।

'यह आप क्या कह रहे हैं—क्या आज भाभी से झगड़ा हुआ है जो इस खुशी के मौके पर भी आपके चेहरे पर उदासी देख रहा हूँ।'

'नहीं, अपना सब कुछ छूटने का दुःख तो होता ही है प्रेम बाबू!—उसने एक लम्बी साँस खींचते हुए कहा। तब तक बयरा एक ट्रे में तीन गिलास पानी लेकर आ गया था।

तीन हाट कॉफ़ी क्रीम के साथ, तीन प्लेट क्रीम पेस्ट्रीज, मटन कटले

पुटैटो चाप और शामी कबाब ।'—उमाकान्त ने बैरे को आर्डर दिया ।

'हाँ, हाँ ! यह आप क्या कर रहे हैं, इतनी सारी चीजें, निमंत्रण मैंने दिया, आर्डर आप प्लेस कर रहे हैं ।'—प्रेमकान्त ने रोकते हुए कहा ।

'नहीं, प्रेम बाबू, आज मेरे लिये, आपके लिये खुशी का मौका है इसलिये आज मुझे अपने मन की करने ही दें, क्यों सुधा ?'—उमाकान्त ने झूठी मुस्कराहट के बीच कहा ।

'हाँ ।'—एक लम्बी साँस खींचते हुए सुधा ने कहा ।

'बैठक लम्बी दिखती है मैं अभी सिगरेट लेकर आया ।'—

प्रेमकान्त बाहर हो गये ।

'सुधा, अब तो खुश हो, तुम्हारे संसार को बर्बाद करने उमा कभी नहीं आयेगा ।'

'उमा, मुझे कभी गलत न समझना ।'—सुधा की आँखें भर आई थीं ।

'शायद अब जीवन में कभी तुम्हारे यहाँ न आ सकूँ !'

'ऐसा क्यों ?'

'मैं अपने सुख के लिये दूसरों का सुख नहीं छीनना चाहता । तुम्हें सुखी देखना चाहता हूँ बस यही जीवन की चाह है । यदि उमा की मृत्यु की कभी बात सुनना तो एक बार आ उसके सर पर हाथ जरूर रख देना । जीवन भर की तपन वह भूल जायेगा ।'

'उमा, बस चुप भी रहो ।'—सुधा की आँखें छलक आईं ।

तब तक दूर से प्रेमकान्त सिगरेट का पैकेट हाथ में लिये आते दिखाई पड़ा । उमाकान्त और सुधा दोनों अपने आपको सम्हालने की चेष्टा करने लगे ।

'उमा बाबू, मैं सोचता हूँ मेरे और आपके नाम में कितना कम अन्तर है । आप उमाकान्त और मैं प्रेमकान्त ।'—सुधा के पति ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा ।

'मैं भी अक्सर यही सोचता हूँ ।'—उसने कहा ।

बैरा दो बड़ी ट्रे में अनेक प्लेटें लेकर सामने आ खड़ा हुआ । प्रेमकान्त खाने में तल्लीन हो गया । उमाकान्त और सुधा एक दूसरे को छिपी नजरों से देख रहे थे ।

कॉफ़ी समाप्त होने के बाद जब बिल आया उमाकान्त ने दो दस-दस के नोट बैरे की प्लेट पर रख दिये। सुधा ने उसे रोकते हुए कहा—'यह क्या करते हो ?'

'यदि मैं इसे अपने जीवन की खुशी का एक अंग समझूँ तो तुम्हें किसी प्रकार का एतराज न होना चाहिये।'

सुधा उसे न रोक सकी—उमाकान्त की आँखों में आँसू छलक आये। सुधा ने आँखें झुका लीं। प्रेम ने तो इस घटना पर ध्यान नहीं दिया। बिल था कुल ग्यारह रुपये का। बैरे ने नौ रुपये वापस किये। उसने एक का एक नोट छोड़ दिया और बाकी नोट अपनी जेब में रख लिये।

कॉफ़ी हाउस से निकल वे तीनों कुछ देर हज़रतगंज की चहल-पहल देखते रहे। तभी सामने सैन्ट्रल बैंक के घंटाघर ने नौ बजा दिये।

'अब वापस चलना चाहिये, बच्चा रो रहा होगा।'—प्रेम ने कहा।

'चलिये।'—सुधा इनकार न कर सकी।

'चलिये उमा बाबू, कहाँ जायेंगे, आपको छोड़ता चलूँ।'

'मैं चला जाऊँगा।'

'चलिये ना।'—सुधा ने कहा।

'मैं कुछ देर बाद जाऊँगा।'

'चलो देर हो रही है।'—प्रेम मोटर के पास आ गया था।

'जाने के पहले आवोगे न ?'—सुधा ने गीली आँखों के साथ पूछा।

'शायद अब न आऊँ।'—उमा तेज़ी से भीड़ में ओझल हो गया।

घर लौटकर उमाकान्त सोच रहा था। उसकी सुधा बिलकुल वैसी ही है—वही अल्हड़पन—वही बचपन—वही प्यार, सब कुछ वैसा ही फिर भी वह कितनी बदल गई है। अब सुधा उसकी न होकर किसी और की हो गई है। उसके आगे उसका पुराना संसार नाच उठा और सुधा के लिये उसकी आँख में आँसू भर आये। उसे उन दिनों की याद हो आई जब सुधा की गोद में वह सर रख कहता—'तुम मुझसे कभी अलग तो नहीं होगी ?' सुधा कहती—'उमा, तुम्हें कोई नहीं छीन सकता, तुम मेरे हो।'

जब कभी सुधा रूठ जाती, वह उसे मनाता, खूब मनाता और मनाते-मनाते जब थक जाता सुधा खिलखिलाकर हँस पड़ती और वे दोनों बाग में

दौड़ते । एक दिन सुधा ने जब सुना वह बीमार है तो वह कितना रोई थी । पास के मन्दिर में जाकर भगवान से भीख माँगी थी कि वह अच्छा हो जाये और वह बीमार । सबके विरोध के बावजूद भी रात में उसे देखने आई थी, उसका सर दबाया था, किन्तु यह संसार अधिक दिन तक स्थिर न रह सका और एक दिन उसके हाथ मेंहदी से लाल हो गये ।

उमाकान्त के घरवालों ने जब उमाकान्त के पक्की नौकरी में चुने जाने की खबर सुनी वह खुशियाँ मनाने लगे । बाहर वालों के लिये पक्की नौकरी का आकर्षण कुछ कम नहीं होता । वह क्या जानें मनुष्य अपने आपको बेच देता है । जो भी हो लोगों का कुछ ऐसा विश्वास होता है कि जीवन की स्थिरता केवल सरकारी नौकरी में ही होती है । उमाकान्त को बधाई देने वालों का ताँता बँध गया । उसके हृदय में न कोई विशेष प्रसन्नता थी न दुःख । जहाँ परिवार वालों को उसकी पक्की नौकरी की खुशी थी वहीं दुःख भी कि वह उनसे दूर हो जायेगा । माँ की ममता अपने बालक के लिये आजन्म समान रहती है चाहे वह वृद्ध ही क्यों न हो जाये । उसके हृदय में अपनी सन्तान के प्रति निस्वार्थ मोह होता है । जहाँ उसकी माँ को खुशी थी वहीं उसके नेत्र में आँसू भी । वह नहीं चाहती थी कि उसकी बहू और पोते भी उसके साथ जायें पर अपने पुत्र की खुशी और आराम की चिन्ता कर उसे अपने आपको मज़बूत करना पड़ा ।

: ४ :

सन्तू को उमाकान्त के घर में काम करते सात वर्ष से अधिक हो गये हैं । वह अनाथ होकर भी अपने को अनाथ नहीं समझता । इस परिवार में कुछ ऐसा घुल-मिल गया है कि उसका कोई अपना भी परिवार रहा होगा इसकी उसे कल्पना तक नहीं होती । जिस समय आया था चौदह साल का था और अब तो अच्छा-खासा जवान है । तलवार छाप मूँछें भी हैं ।

सन्तू और उमाकान्त की उम्र में चार-पाँच साल का ही अन्तर रहा होगा। उनमें मालिक-नौकर का सम्बन्ध कम मित्रता का अधिक है। इसीलिये वह उमाकान्त को भैयाजी और उसकी पत्नी को बड़ी बहू ही कहकर सम्बोधित करता है। अक्सर उन दोनों में मनमुटाव भी हो जाता पर आपसी मतभेद दूर होते भी देर नहीं लगती। सन्तू अपने भैयाजी के लिये अपना सर्वस्व कुर्बान कर सकता है। अक्सर समय-समय पर उसे अपनी सीख देने से भी बाज नहीं आता।

जिस समय उमाकान्त की पत्नी ने सन्तू से कहा, हम लोग यहाँ से दिल्ली चले जायेंगे, उसने अपने भी जाने की व्यवस्था कर डाली। उमाकान्त के परिवार वाले सन्तू को नहीं छोड़ना चाहते थे पर सन्तू अपने भैयाजी को। सन्तू को लेकर उमाकान्त, उसकी स्त्री, और परिवार वालों में अनेक बार अक्सर कहा-सुनी हो जाती थी। उमाकान्त हमेशा सन्तू का पक्ष लेता।

'सन्तू, तू क्या करेगा चलकर, यहाँ का काम कौन सम्हालेगा? वहाँ तो हम कोई दूसरा आदमी भी रख लेंगे।'——उमाकान्त की स्त्री प्रभा ने सन्तू को समझाते हुए कहा।

'बड़ी बहू, भैयाजी पर तुमसे ज्यादा हक हमारा है।'——सन्तू ने अपना अटूट हक जताते हुए कहा।

'मैं कब कहती हूँ तुम्हारा हक नहीं है, मगर यहाँ की भी तो हमें कुछ सोचनी है।'

'ऐसा ही है बड़ी बहू तो तुम रुक जाओ मगर मैं तो भैयाजी को अकेला नहीं छोड़ सकता।'

'तू तो ऐसे कहता है गोया मैं तुझसे ज्यादा उनकी फिक्र नहीं कर सकती।' ——प्रभा ने तनिक कुपित होते हुए कहा।

'मैं भैयाजी के लिये जो कर सकता हूँ वह आप नहीं कर सकतीं।'

'बस अपनी बेसिर-पैर की सीख दे सकता है।'

'तुम क्या जानो बहू, अगर भैयाजी की जिन्दगी की उदासी में कोई काम आ सकता है तो सिर्फ मैं।'

प्रभा सन्तू के इस कटाक्ष से क्षुब्ध हो बोली——'रहने भी दे बहुत बढ़-बढ़कर बोलने लगा है।'

'मैं बड़े बोल नहीं बोलता पर जानता हूँ आप सब उनके जले पर नमक छिड़क सकती हैं, उनके घावों को सहला नहीं सकतीं।'

'बस अपनी लगाम-सी जबान बन्द कर।'

'मुझे निकाल भले ही दो मगर मैं तो भैयाजी का साथ नहीं छोड़ सकता, मुझे नौकरी की परवाह नहीं है मेरे भैयाजी जीते रहें।'

प्रभा का आत्मसम्मान तिलमिला उठा—'तू नहीं जा सकता।'

'मैं जाऊँगा।'

सन्तू और प्रभा का यह झगड़ा उग्र हो चुका था, इसकी भनक उमाकान्त के कानों में भी पड़ी। वह तुरन्त अपना कमरा छोड़ बाहर आया।

'प्रभा, यह सुबह-सुबह कौनसा झगड़ा रच डाला?'

'इस सन्तू को और सर चढ़ाओ।'

'क्या हुआ?'

'बहस करने में बहुत आगे बढ़ गया है।'

'क्या बहस की?'

'इसी से पूछो।'

'क्या बात है सन्तू?'

'कुछ नहीं भैयाजी, मैंने सिर्फ इतना ही कहा कि मैं भी भैयाजी के साथ जाऊँगा तो बहूजी कहती हैं तू नहीं जा सकता।'

'देखिये कितना बेधड़क जवाब दे रहा है। अगर सन्तू गया तो मैं नहीं जाऊँगी।'

'सन्तू के जाने में तुम्हें क्यों आपत्ति है?'

'मुझे बहुत आपत्ति है, मैं इसे नहीं ले जाऊँगी।'

'मगर मैं सन्तू के बिना नहीं रह सकता।'

सन्तू की आँखें गर्व से नाच उठीं।

'सन्तू मेरे बचपन का साथी है, मेरे मनोभावों को समझता है।'—उमाकान्त ने पुनः प्रभा की ओर देखते हुए कहा। प्रभा अपना यह अपमान न सह सकी और अपने कमरे में तेजी से चली गई। उस दिन सन्तू को ले उमाकान्त और प्रभा में अच्छी-खासी झड़प हुई, अन्त में यह झगड़ा उमाकान्त की माँ के समक्ष पेश हुआ और उन्होंने फैसला दिया—'सन्तू

उमाकान्त के साथ जायेगा।'

प्रभा सास के आदेश की अवहेलना नहीं कर सकती थी, अतएव उसे भी सन्तू को साथ ले जाने की स्वीकृति देनी पड़ी।

प्रभा घर-गृहस्थी की आवश्यक चीज़ों के बाँधने में व्यस्त हो गई, और सन्तू तत्परता के साथ उसे पूर्ण सहयोग दे रहा था। प्रभा ने सारी चीजें इस तरह बाँध लीं गोया उसे अब फिर वापस ही नहीं लौटना है। उमाकान्त ने लाख समझाया केवल आवश्यक चीजें इकट्ठी करो किन्तु प्रभा ने उसकी एक न सुनी।

उमाकान्त की माँ को जहाँ अपने पुत्र को पक्की नौकरी मिलने की खुशी थी वहीं उसके अलग होने का रंज। उमा को तीन साल की बच्ची को वह जी-जान से प्यार करती थी और उसका विछोह तो उसे कदापि सहन नहीं हो सकता था। प्रभा अपने पति के इस विचार से कदापि सहमत न थी कि सरिता को यहीं छोड़ जाया जाय किन्तु वह जानता था उसकी माँ सरिता के बिना एक पल नहीं रह सकतीं। माँ की घोर उदासी उससे न देखी गई और उसने अपनी माँ से कहा—'मैं सोचता हूँ सरिता को आपके पास ही छोड़ जाऊँ। आपका जी भी बहला रहेगा और उसकी देख-रेख यहाँ ठीक से हो सकेगी।'

'मगर बहू की राय भी तुमने ले ली है बेटा, जिस तरह मैं अपने बेटे से अलग होने पर इतनी दुःखी हूँ वह भी अपनी बेटी से अलग हो क्या दुःखी नहीं होगी?'

'मैं जानता हूँ उसे कष्ट अवश्य होगा किन्तु मुझे सरिता के जीवन की भी फिक्र है। नई-नई जगह जा रहा हूँ जाने कब कैसा वक्त पड़े, कैसा पास-पड़ोस मिले फिर उसके लिये मैं इतने साधन जुटा भी सकूँ अथवा नहीं।'

'जैसा तुम ठीक समझो। सरिता के रहने से मेरे मन को बहुत कुछ शान्ति रहेगी लेकिन मैं नहीं चाहती अपने सुख के लिये उसके माँ-बाप का दिल दुखाऊँ।'

'कम-से-कम मुझे तो कोई दुःख न होगा, रहा प्रभा का, वह भी मान जायगी यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ।'

'मैं नहीं चाहती मेरे लिए तुम में आपस में मनमुटाव हो। मैं तो तुम्हें और बहू को भी अलग नहीं करना चाहती थी मगर सन्तान बड़ी होने पर अपने हाथ-पाँव की बनना चाहती है। उनकी खुशी में ही मेरी खुशी है। यहाँ जो कुछ रूखा-सूखा मिलता था इसमें ही क्या कमी थी पर मैं तुझे नहीं रोकना चाहती, अपने दिल पर पत्थर रखकर सब कुछ सहन कर लूँगी।'

'माँ, तुम यह सब कुछ मत सोचो। उन्नति के लिये घर छोड़ना ही पड़ता है। मैं बराबर छुट्टियों में आता ही रहूँगा। सरिता को यहीं छोड़ जाऊँगा।'

'अगर तुझे दुःख नहीं है तो उसे छोड़ जाओ। इतने बड़े घर में वही तो अकेली है जिससे मेरा जी बहला रहेगा। बहू की यदि तबियत न लगी तो बुला लेना।'

अन्त में निश्चय हुआ कि सरिता यहीं रहेगी फिर सरिता भी अपनी दादी के बिना नहीं रह सकती थी। सरिता अपनी दादी से इतना घुल-मिल गई थी कि उसकी अपनी माँ भी कोई है यह वह नहीं जानती थी। जब उमाकान्त ने अपना निश्चय अपनी पत्नी को सुनाया उसकी आँख में आँसू आ गये। उसने सरिता से पूछा—

'बेटी, तू दादी पास रहेगी या अपनी माँ के पास?'

'दादी पास।'—सरिता ने अपनी तोतली भोली-भाली भाषा में उत्तर दिया।

'तुझे दादी अच्छी लगती है या माँ?'

'दादी!'—उसका स्पष्ट उत्तर था।

सरिता घर में इतना हेर-फेर देख कुछ हतप्रभ-सी थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था यह सब तैयारी क्यों हो रही है।

सन्नू को जब काम-धाम से कुछ फुर्सत मिली वह घर के नौकरों और अपने बाहरी साथियों पर रोब हाँक रहा था गोया वह भी किसी बड़ी नौकरी पर जा रहा हो।

: ५ :

उमाकान्त, सन्तू और प्रभा दिल्ली की गाड़ी पर सवार थे। उन्हें स्टेशन पर विदा करने के लिये उमाकान्त के पिता, उसकी माँ और तीन साल की बच्ची सरिता सभी मौजूद थे। उमाकान्त के अनेक मित्र फूलों के हार भी साथ लेते आये थे। उमाकान्त और प्रभा फर्स्ट क्लास में थे और सन्तू थर्ड में किन्तु मँडरा वह फर्स्ट क्लास के आगे इसी तरह रहा था गोया उसे भी उसी दर्जे में जाना है।

उमा की माँ की आँखों मे बार-बार आँसू छलक आते और वह उन्हें अपने आँचल से पोंछती जातीं। उमा के पिता उसे परदेश की कठिनाइयों से अवगत करा रहे थे। मित्रगण मलीनता और प्रसन्नता दोनों के ही बीच उन्हें घेरे खड़े थे। प्रभा सरिता को देख रो रही थी। अबोध सरिता को यह सब कुछ एक खेल-सा लग रहा था। वह अपनी दादी का हाथ पकड़े कह रही थी—'अम्मा, हम लोग भी चलेंगे न?'

'हाँ बेटी, कल!'—उमा की माँ उसे फुसला रही थी।

माँ की ममता से बढ़कर संसार में कोई पवित्र चीज नहीं। मनोविज्ञान को मन में होने वाली क्रियाओं का क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन कहा अवश्य जाता है किन्तु इस विज्ञान में भी इतनी शक्ति कहाँ जो इस पवित्र भावना का अध्ययन कर सके। कहा जाता है आत्मज्ञान के लिये मनोविज्ञान का अध्ययन परम आवश्यक है किन्तु ममता को वैज्ञानिक किस कोटि में रख किस प्रकार अध्ययन कर सके है यह अभी तक स्पष्ट नहीं है। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाय कि यह मनोविज्ञान के वश की बात नहीं तो कदापि अनुचित न होगा।

पिता श्रेष्ठ सन्तान चाहता है और माँ केवल सन्तान। प्रेम में स्वार्थ होता है और ममता में त्याग। बाल्यावस्था का प्रेम साथी ढूंढ़ता है, युवावस्था का प्रेम वासना की शान्ति और वृद्धावस्था में सहायक किन्तु ममता केवल ममता है। माँ यह नहीं सोचती उसका बच्चा बुरा है या अच्छा, उसकी सन्तान बाल है अथवा युवा। वह केवल इतना जानती है वह उसकी माँ है और वह उसकी आँखों का तारा। उस तारे को वह कभी

नहीं ओझल होते देखना चाहती। उसके लिये वह बड़ी से बड़ी कीमत चुका सकती है। प्रेम और ममता दोनों ही एक सरिता के समान हैं किन्तु दोनों में महान् अन्तर है। प्रेम रूपी सरिता जब सुचारू रूप से बहती है तो उसके आस-पास हरियाली छा जाती है। जब इस सरिता के प्रवाह में रुकावट आती है तो वह उसी हरियाली को नष्ट कर उन्मत्त हो दौड़ती है। वह मनुष्य को देवता से पिशाच बना देती है। किन्तु ममता में केवल उत्सर्ग की भावना के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

उमा की माँ अपने पुत्र के बिछोह से जितना दुःखी थी उससे कहीं अधिक प्रभा से सरिता के अलग होने पर। वह इस बात की कल्पना स्वतः कर रही थी कि प्रभा के हृदय पर सरिता के छूटने का क्या प्रभाव पड़ रहा था।

गार्ड ने सीटी दी। उमा ने पिता के पैर छूए और माँ के पैरों की ओर बढ़ा। उसकी माँ आँसू की मोटी बूँदें न रोक सकी और उन आँसुओं के बीच उसका रोम-रोम उसे आशीष दे रहा था। सरिता की दादी ने उसे गोद में उठा प्रभा की ओर बढ़ाया—प्रभा ने उसके ललाट चूम लिये और फफक पड़ी। उमा के पिता का भी गला भर आया था। सारा वातावरण करुणापूर्ण था। दोस्तों ने उमा के गले में हार डाले। गाड़ी ने सीटी दी और मन्द गति से खिसकने लगी। उमा गाड़ी पर चढ़ गया। सन्तू बगल के सर्वेन्ट्स क्लास में। प्लेटफार्म पर रूमाल हिल रहे थे। उमा उनके उत्तर में दरवाज़े पर खड़ा रूमाल दिखा रहा था और प्रभा सिसक रही थी। उसकी आँखें लाल हो गईं। धीरे-धीरे गाड़ी के मुसाफिरों की आँखों से प्लेटफार्म ओझल हो गया था और प्लेटफार्म पर खड़े व्यक्तियों की आँखों से गाड़ी। सरिता जो हर वक्त अपनी तोतली बोली से सब का मन मोहे रहती थी आज शान्त थी। उसकी कुछ समझ में न आ रहा था।

सन्तू आराम से अपने डिब्बे में बैठा सुर्ती फाँक रहा था। दो-चार उसके साथ के अन्य मुसाफिर सोच रहे थे किसी बड़े अफसर का ख़ासा नौकर है इसलिये उससे काफी दूर हटकर बैठे थे।

सहसा एक मुसाफिर से न रहा गया। पूछ ही बैठा—'कहाँ जा रहे हैं ?'

'दिल्ली !'—सन्तू ने टके-सा जवाब दे खिड़की की तरफ गर्दन फेर ली।

'साथ वाले डिब्बे में आपके साहब हैं?'

'और नहीं तो कौन हैं। तुम्हें क्या करना है?'—सन्तू को शक था कि ट्रेन पर भेदिये और चोर बहुत होते हैं इसलिये वह ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहता था।

उसके इस रूखे उत्तर से फिर किसी का साहस नहीं हुआ कि उससे कुछ और पूछे।

उमाकान्त ने कूपे को अन्दर से बन्द कर लिया और प्रभा के आँसू पोंछता हुआ बोला—'नाहक रो रही हो।'

किन्तु प्रभा के आँसू न रुके। उमा उसे समझाता रहा। धीरे-धीरे उसके प्यार में प्रभा सब कुछ भूल उसकी गोद में सो गई। गाड़ी तीव्र गति से भागी जा रही थी। उमा ने धीरे से उठकर कम्पार्टमैण्ट की बत्ती बुझा दी। केवल 'नाइट-लाइट' का मन्द नीला प्रकाश मात्र रह गया। उसने कपड़े बदले और उसी बर्थ पर प्रभा की बगल में पड़ रहा।

प्रभा नींद में बड़बड़ा रही थी—'सरिता, तेरे लिये जल्दी खिलौने लाऊँगी।'

उसने उसके सुन्दर लम्बे चेहरे को अपनी बाहु पर रख लिया। प्रभा के हाथ उसकी पीठ पर थे और धीरे-धीरे वह भी नींद की गोद में खो गया।

सुबह कूपे के दरवाज़े पर भड़भड़ाहट की आवाज़ सुन उमा और प्रभा दोनों ही हड़बड़ाकर उठ बैठे। प्रभा अपनी अस्त-व्यस्त साड़ी को सँवारने लगी।

उमा ने दरवाज़ा खोला तो देखा सन्तू खड़ा है। 'सरकार, दिल्ली में गाड़ी खड़ी है।' उसके पीछे खड़े दो कुलियों ने सामान उतारना शुरू कर दिया।

दिल्ली आकर ही उमा का सफर समाप्त नहीं हुआ था। उसे अभी दिल्ली से चालीस मील दूर और जाना था। दूसरी गाड़ी के आने में एक घंटे की देर थी अतएव सामान सन्तू के हवाले कर वह फर्स्ट क्लास वेटिंग रूम में चले गये। वहाँ नहा-धो साथ की छोटी अटैची में से जिसे वह साथ लेते गये थे कपड़े निकाल कपड़े बदले और बाल सँवार रेस्तराँ में आ चाय पी। जिस समय प्रभा और उमा प्लेटफार्म पर पहुँचे गाड़ी आने में केवल पाँच

मिनट बाकी थे । सन्तू ईमानदार नौकर की भाँति सामान से एक मिनिट के लिये अलग न हुआ था । उमा ने उसे पैसे दिये—

'गाड़ी पर सामान रखने के बाद कुछ खा-पी लेना, अभी दो घंटे का रास्ता है ।'

प्लेटफार्म पर खूब चहल-पहल थी । फल-चाय-पान के खोमचे लिये खोमचे वाले प्लेटफार्म के चक्कर लगा रहे थे । तभी किसी खिलौने वाले ने प्रभा को एकदम से चौंका दिया ।

'बीबीजी, ब्यूटीफुल डाल !"

प्रभा को एकदम से सरिता की याद हो आई और उसके आगे प्लेटफार्म पर खड़ी सरिता का शान्त स्वरूप साकार हो उठा । वह उसके ध्यान में खोई ही थी कि गाड़ी की गड़गड़ाहट ने उसे पुनः चौंका दिया ।

कुलियों ने गाड़ी पर सामान रखा, सन्तू ने उन्हें सहेजा और प्रभा की आँखों में फिर वही आँसू की बूँदें छलक पड़ीं ।

उमाकान्त को परिस्थिति ताड़ते देर न लगी । वह उसका मन बहलाने के लिये बुकस्टाल पर गया और वहाँ से दो-चार रोचक पत्रिकायें ला उसके सामने रख दीं ।

कुली रेट से अधिक पैसा पा लम्बा सलाम दे आगे बढ़ गये । सन्तू एक खोमचे वाले को आवाज़ दे रहा था ।

: ६ :

कदमपुरी एक नई बस्ती थी अतएव नगरी-ग्राम्य वातावरण में भी नगर का चित्र उपस्थित कर रही थी । छोटे-छोटे इने-गिने मकान और ग्राम्य कार्यकर्त्ताओं की शिक्षा हेतु संस्थाएँ यही दो चीजें यहाँ थीं । वहाँ के निवासियों की आवश्यकता की पूर्त्ति के लिये एक छोटा सा किन्तु सुन्दर बाजार भी बना था जहाँ आवश्यकतानुसार हर चीज प्राप्त हो सकती थी । बस्ती की आबादी सात हजार से भी कम थी किन्तु आकर्षण कम न था । बिजली-

पानी हर प्रकार की व्यवस्था थी। समाज को संसार के समक्ष आदर्श नगरी की झाँकी प्रस्तुत करनी थी अतएव इसके निर्माण में किसी प्रकार की कमी नहीं रखी गई। यद्यपि यह सत्य है कि जितना पैसा इस नगरी के निर्माण में व्यय हुआ था उतने में यह और भी अधिक सुन्दर बन सकती थी पर इसके निर्माण में लगे ठेकेदारों को भी अपने हाथ रँगने थे। जो भी हो यह प्रयास एक आदर्श प्रयास था। इसी नगरी की एक संस्था में उमाकान्त को एक शिक्षक के रूप में कार्य करना था। वह इस नगरी से सर्वथा अपरिचित था अतएव उसने अपनी संस्था के प्रधान को तार द्वारा सपत्नीक आने की सूचना दे दी थी और यह साफ लिख दिया था कि उसके निवास के स्थान का प्रबन्ध भी कर दें।

स्टेशन पर गाड़ी कुछ ही क्षण ठहरती थी अतएव उसने गार्ड को पहले से बता दिया था कि उसके पास सामान अधिक है अतएव वह गाड़ी कुछ और ठहरा देंगे। गार्ड ने उसे आश्वासन दिया जब तक उसका सामान नहीं उतर जायेगा गाड़ी खड़ी रहेगी। एक स्टेशन पूर्व सन्तू को भी उसके डिब्बे में आने की अनुमति मिल गई थी।

स्टेशन आते ही उमाकान्त के प्लेटफार्म पर नज़र दौड़ाई। उस छोटे से वीरान प्लेटफार्म पर केवल चन्द चढ़ने-उतरने वाले यात्रियों के अतिरिक्त और कोई न था। हाँ एक नीली वर्दी पहने वहीं का कोई साधारण कर्मचारी अवश्य टहल रहा था। उस कर्मचारी और सन्तू की सहायता से धीरे-धीरे गाड़ी से सारा सामान उतरवा उसने पहले प्रभा को नीचे उतारा और फिर स्वयं उतरा। उसके माथे पर पसीने की बूँदें छलक आई। गार्ड ने पूछा—'सब ठीक है?' उसने उत्तर में—'थैंक यू' कहा। गार्ड ने सीटी दी और गाड़ी चल पड़ी। वह सोच रहा था कैसा विचित्र स्टेशन है एक कुली तक नहीं। प्रभा भी कुछ परेशान-सी दिख रही थी तभी हाँफते हुए एक सज्जन उसके निकट आ खड़े हुए—

'क्या आप मिस्टर उमाकान्त हैं?'

'जी हाँ!'

'मैं हूँ, अनिल अग्रवाल, आपका कोलीग। जरा देर हो गई आपको बहुत तकलीफ़ हुई होगी।'

'जी नहीं, नौकर साथ था इसलिये सब ठीक ही हो गया पर मैं नहीं जानता था कि यहाँ एक कुली तक नहीं होगा।'

'अरे साहब कुली, यहाँ मरने पर लाश उठाने वाले नहीं मिलते।'—वह खिलखिला पड़े।

उनके पीछे-पीछे दो-तीन चपरासी आ गये थे। उन्होंने हुक्म दिया—'सामान जीप पर लदवाओ।'

लम्बा, न बहुत मोटा न बहुत पतला बल्कि स्वस्थ गेंहुए रंग का शरीर। इन्हें देख प्रतीत होता था कि श्री अग्रवाल काफी अनुभवी व्यक्ति हैं। फिर इस समय इस वीरान परदेश में तो वही हमारे सच्चे हितू थे। प्रभा जीप पर पीछे बैठी थी। सन्तू और चपरासी सामान के साथ ट्रेलर पर ही थे। उमा और श्री अग्रवाल आगे बैठे थे। ड्राइवर ने बिना कुछ कहे-सुने जीप स्टार्ट की और सर्राती हुई जीप कुछ ही क्षणों में एक छोटे से मकान के आगे रुक गई।

'यहाँ मकानों की बड़ी दिक्कत है, मिलते ही नहीं पर मैंने बड़ी मुश्किल से आपके लिये यह मकान ढूंढ़ ही लिया है।'

उमा और प्रभा की आँखें अहसान से झुक गई। मकान छोटा अवश्य था किन्तु दो व्यक्तियों के लिये काफी था। साफ-सुथरा तो था ही साथ ही सामने एक छोटा सा लान और तरकारियों की बेड़ भी थी। अनार, अमरूद के पेड़ फूल दे रहे थे। मुसम्मी भी दो-चार छोटी-छोटी लगी थीं। एक छोटा-सा आम का पेड़ भी था। इसके अतिरिक्त फूल के भी अनेक पौधे थे।

श्री अग्रवाल ने कहा—'सामान रख दें, नौकर को यहीं छोड़ दें और चलें मेरे घर भोजन तैयार है। शायद आपको नहाना-धोना हो। वह भी वहीं ठीक रहेगा क्योंकि अभी यहाँ तो जब तक सब ठीक से जम न जाये ठीक नहीं रहेगा।'

प्रभा ने कहा—'आप बेकार तकलीफ़ कर रहे हैं, नौकर अभी सब कुछ बना डालेगा।'

'वाह आपने भी खूब कहा। मेरी बीवी आप सबका इन्तजार कर रही है। फिर मेरा घर कोई ग़ैर थोड़े ही है।'

'नहीं, अग्रवाल साहब, आप सचमुच तकलीफ़ कर रहे हैं किसी प्रकार के तकल्लुफ की बात नहीं। फिर आप ही लोगों के सहारे तो हम सब यहाँ आये हैं।'

'अजी आपने भी खूब कही। मैं भी उत्तर प्रदेश का हूँ, लखनऊ के आप, मथुरा का मैं, फिर हम लोग एक दूसरे के काम न आयेंगे तो कौन आयेगा। यह कभी नहीं होगा।'

श्री अग्रवाल के एक-एक शब्द में सच्चाई और निःस्वार्थ स्नेह की छाया थी। उमा और प्रभा उनकी बात को न टाल सके और सचमुच जाकर देखा श्रीमती अग्रवाल और उनके बच्चे उत्सुकतापूर्वक उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

कुछ ही क्षणों में उमा और अग्रवाल के परिवार काफी निकट आ गये। श्रीमती अग्रवाल और प्रभा तो अलग होने का नाम ही न ले रही थीं। श्री और श्रीमती अग्रवाल की आवभगत से उमा और प्रभा विभोर हो उठे। श्री अग्रवाल ने अपने नौकर के हाथ सन्तू के लिये भी खाना भेज दिया था। जीप उन्हें छोड़कर चली गई थी। श्री अग्रवाल ने जीप वाले को आदेश दे दिया था कि थोड़े-बहुत आवश्यक फर्नीचर जैसे खाट और टेबुल-कुर्सी आदि भी वह उमा के यहाँ दफ्तर से पहुँचवा दे।

श्री अग्रवाल का परिवार एक आदर्श परिवार था। तीन बच्चे पर निहायत साफ-सुथरे और कल्चर्ड। बीवी भी ग्रेजुएट थी। बातचीत के दौरान में उनकी पुरानी जान-पहचान निकल आई।

उमा ने निश्चय कर लिया—इस अनजान जगह में श्री और श्रीमती अग्रवाल ही उसके और प्रभा के सच्चे हितैषी और पथ-प्रदर्शक रहेंगे।

: ७ :

भोजन आदि से निवृत्त होने के पश्चात् श्री अग्रवाल ने कहा—'मिसेज़ उमाकान्त को यहीं रहने दें, आप दफ्तर चलें।' उसने उनकी बात का समर्थन

किया और उनके साथ चल पड़ा। रास्ते में तरह-तरह की बातें होती रहीं।

संस्था की इमारत शानदार तो नहीं कही जा सकती फिर भी बहुत ही आकर्षक, पक्की और नई थी। चारों तरफ अच्छा-खासा हरी दूब से ढका मैदान था। फूलों और सब्जियों की क्यारी के साथ बेतरतीब से लगे सीशम और आम के अनेक छायादार वृक्ष भी थे। एक वृक्ष के नीचे आठ-दस कुर्सियाँ पड़ीं थीं और वहीं चार पुरुष और दो महिलायें आपस में बातचीत में लगे थे।

उमा को देख वे कुछ सहम से गये तभी श्री अग्रवाल ने उमा का परिचय दिया—'यह हैं अपने नये सहयोगी श्री उमाकान्त।' सबके बीच में एक अधेड़-से सज्जन थे वही इस केन्द्र के प्रधान थे। गेंहुआँ रंग, दुबला-पतला शरीर और रोशनी में चमचमाती हुई गंजी खोपड़ी। वेश-भूषा बहुत साधारण थी।

उनकी वेश-भूषा को देखकर बिना किसी संकोच के अंदाजा लगाया जा सकता था कि वह यदि कांग्रेसी मनोवृत्ति के नहीं तो कम-से-कम महात्मा गांधी के सिद्धान्तों के अनुकरणकर्ता अवश्य हैं। श्री अग्रवाल ने उमा की तरफ घूमते हुए कहा—'यह हैं अपने प्रधान श्री नानाकर!'

उमाकान्त ने नम्रता के साथ दोनों हाथ बाँध उनका अभिवादन किया। उत्तर में उन्होंने एक कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। श्री अग्रवाल भी उमाकान्त के पास बैठ गये। श्री नानाकर ने कहा—'आपकी प्रतीक्षा में ही हम सब यहाँ बैठे हुए थे।'

'मुझे बहुत खेद है कि आप सबको मेरे लिये इतना इन्तजार करना पड़ा।' —उमाकान्त ने सिर नीचा करते हुए कहा।

'यह हैं अन्य शिक्षकगण।'—कह वह अपने बगल में बैठे एक व्यक्ति की ओर आँखें घुमाकर बोले—'श्री सिन्हा उपप्रधान।'

श्री सिन्हा का चेहरा काफी भव्य था। मटमैला रंग, माथे पर चढ़ी हुई दो-तीन गहरी रेखायें और चेहरे पर मन्द किन्तु अर्थ-युक्त मुस्कान। कोट, टाई और पैन्ट में वह बिलकुल साहब-से नजर आ रहे थे। उमाकान्त को ऐसा लगा जैसे उनके चेहरे पर उसे देखकर ही वह मुस्कान दौड़ गई हो। वह यह सोच मुस्करा रहे हों कि यह नई उम्र का बच्चा यहाँ किस तरह

आन फँसा। उमाकान्त मनोविज्ञान का विद्यार्थी तो नहीं था फिर भी एक लेखक होने के नाते वह इतना तो समझ ही सकता था कि इस व्यक्ति में गूढ़ता है और उस गूढ़ता का पता लगाना कोई साधारण बात नहीं। उनके व्यक्तित्व में एक विशेषता थी। वास्तविक रूप में व्यक्तित्व शब्द के प्रयोग से तात्पर्य होता है किसी व्यक्ति विशेष की संवेदनाओं मूल, प्रवृत्तियों, उसकी कल्पना, स्मृति, बुद्धि तथा विवेक एवं उद्वेग से। किन्तु साधारण रूप में उसकी बाहरी आकृति से ही हम इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं और इसी आधार पर श्री सिनहा के प्रति उमाकान्त के हृदय में ऐसी भावना उठी।

श्री सिन्हा के निकट थे श्री गुलाम हसन। उम्र यही पैंतीस के लगभग रही होगी किन्तु उनके अंग-अंग से चंचलता टपक रही थी। गेंहुआँ किन्तु लम्बा चेहरा। सर पर थोड़े बाल। बड़ी-बड़ी किन्तु फुदकती हुई शरारत भरी आँखें। चूड़ीदार पायजामे पर मामूली-सी अचकन। काफी खुश-मिजाज से नज़र आ रहे थे।

उनके पास ही बैठा था एक निहायत खूबसूरत गोरा-चिट्टा, हृष्ट-पुष्ट नौजवान। वह थे श्री खत्री। वह भी काफी मिलनसार किन्तु अत्यधिक सिस्टमैटिक और कल्चर्ड-से मालूम पड़ते थे।

उनके निकट बैठी थीं श्रीमती मेहरा। उम्र तो अधिक नहीं रही होगी किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि उनके जीवन की विभिन्न परिस्थितियों ने उन्हें आयु से अधिक वयस्कता प्रदान कर दी है। बोल-चाल में निहायत मधुर, कवयित्रियों-सा कोमल व्यवहार, पहनाव-ओढ़ाव में निपुणता उनके नारीत्व को आभा प्रदान कर रही थी।

उन्हीं के निकट थीं कुमारी सावन्त। पहनाब-ओढ़ाव में जितनी ही अधिक सादगी थी वाणी में उतनी ही कर्कशता। कुरूप यदि नहीं कहा जा सकता तो सुन्दर कहना भी सुन्दरता की व्याख्या का अपमान करना ही होगा। उनकी बात-चीत से एक अहम् की भावना प्रकट हो रही थी और उस अहम् में झूठे अहंकार का भी समावेश था। उनकी आँखें अधिक विशाल तो नहीं थीं पर वह उन्हें इस तरह फाड़-फाड़कर देख रही थीं गोया वह सबको खा सी जायेंगी। श्यामल वर्ण में प्रकृति ने मिठास भरी है तभी

तो कोयल की कूक के समक्ष बसन्त भी नतमस्तक हो जाता है किन्तु यहाँ उमाकान्त को ऐसा लगा जैसे जहाँ श्यामल वर्ण में मिठास होती है वहीं कौए के काँव-काँव में कर्कशता भी।

उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे वह कोई मनोविज्ञान का विद्यार्थी हो और उसे इस 'लैबोरेटरी' में व्यक्तियों के व्यक्तित्व एवं उनके मनोवृत्तियों के अध्ययन के लिये भेज दिया गया हो। मनोविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् कार-लाइल ने एक बार बहुत ही ओजपूर्ण ढंग से कहा था कि नौ दर्जी मिलकर एक मनुष्य को बना देते हैं।' यद्यपि यह ठीक है कि किसी व्यक्ति का तेज उसकी प्रतिभा का ही तेज नहीं होता बल्कि उसकी सजावट भी उसके तेज को घटाती-बढ़ाती है फिर भी उसके बोल-चाल एवं अन्य व्यवहार के ढंग भी मनुष्य के रूप को प्रिय अथवा अप्रिय बनाते हैं। इसमें किसी को आपत्ति नहीं होगी कि एक मधुर भाषी, शीलवान व्यक्ति एक रूपवान किन्तु कटु-भाषी, दम्भी व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर मालूम होता है। फिर कहीं वह कुरूप भी हो तो क्या होगा? वही जिसे हम कहते एक तो निमकौड़ी दूजे नीम चढ़ी।

डाक्टर युंग के सिद्धान्त के अनुसार भले ही बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी दो प्रकार के व्यक्ति होते हों किन्तु व्यावहारिक रूप में एक अन्य प्रकार के भी व्यक्ति होते हैं जो इन दोनों में नहीं। यदि शुकदेव ऋषि, प्लैटो, शोपेन-हार आदि महापुरुषों की गणना अन्तर्मुखी व्यक्तियों में की जा सकती है तो इनसे पूर्णतः विपरीत सांसारिक व्यवहारों में डूबे व्यक्तियों को बहिर्मुखी में। पर प्रश्न यह उठता है कि युंग महाशय ने ऐसे व्यक्तियों के लिये कोई सिद्धान्त क्यों नहीं ढूँढ़ा जो इन दोनों में नहीं आते शायद वह भी ऐसे व्यक्तियों से भय खाते रहे होंगे।

जो भी हो किसी व्यक्ति के अध्ययन के लिये फ्रायड ने सबसे अधिक उल्लेखनीय बात कही है। उनके अनुसार मन के तीन भाग होते हैं। एक अहं भाव, दूसरा नैतिक अहम् और तीसरा प्राकृतिक स्वत्व जिन्हें उनके शब्दों में इगो, सुपर इगो और इड कहा जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विभाजन नैतिक अहम् और प्राकृतिक अहम् के विरोध के कारण ही होता है। जिन लोगों के जीवन का आदर्श बहुत ऊँचा हो और जो अपने

प्राकृतिक स्वत्व को इन आदर्शों के अनुरूप नहीं ढाल पाते उनका जीवन खिंचावों से भर जाता है। वह एक नये मार्ग को अपना लेते हैं और उनका जीवन असाधारण बन जाता है। वह मनुष्य और मनुष्यों का अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिकों के वश में नहीं होते। वह अपने ही ढंग के एक अलग प्रकार के मनुष्य बन जाते हैं। यदि यही 'थ्योरी' कुमारी सावन्त के लिये उमाकान्त अपनी विचारधारा के दौरान में अप्लाई कर बैठा तो यह उसके लिये कोई अनुचित बात नहीं थी।

उमाकान्त के हृदय में श्री सिन्हा और कुमारी सावन्त के लिये एक विशेष कौतूहल उत्पन्न हुआ। श्री सिन्हा की मन्द मुस्कराहट अब भी जारी थी और कुमारी सावन्त का उसे घूरकर देखना अब भी नहीं रुका था, तभी इस शान्त वातावरण को तोड़ते हुए श्री गुलाम हसन ने कहा—

'जनाब की तारीफ मैं सुन चुका हूँ, बन्दा भी लखनऊ के पास का ही रहने वाला है। अरे हाँ, इस पहली मुलाकात में कम-से-कम आपको इस वक़्त हमारी चाय की दावत तो कबूल करनी ही पड़ेगी।'

इसके पूर्व कि उमाकान्त कुछ कहता श्री अग्रवाल ने चट से उसकी ओर से कहा—'अभी-अभी खाना खाकर आ रहे हैं।'

'मैंने जनाब से नहीं अपने नये दोस्त से कहा है।'—गुलाम हसन ने व्यंगपूर्ण ढंग से कहा।

उमाकान्त ने अग्रवाल की बात का समर्थन किया—'जी ठीक ही कह रहे हैं अग्रवाल साहब। बिलकुल अभी-अभी आपके घर से खाकर चला आ रहा हूँ।'

'माना साहब यह बड़े आदमी हैं खाना खिला सकते हैं पर मुझ जैसे गरीब दोस्तों को मामूली-सी चाय से तो इन्कारी नहीं ही करनी चाहिये।'— उन्होंने तुरन्त चपरासी को बुला दस आदमियों के लिये चाय, रसगुल्ले और कुछ फल लाने का आदेश दिया।

श्री नानाकर जो अब तक चुप थे बोल पड़े—'मिस्टर उमाकान्त, हर दाने पर आदमी की मुहर होती है, आपको भी आज गुलाम हसन साहब के दानों पर मुहर है।'

'मगर आप सब भी तो उसमें शरीक होंगे।'—उमाकान्त के मुँह से

अकस्मात निकल गया ।

'अरे भाई आपके साथ-साथ हम सबकी भी उस दाने पर मुहर जो लिखी थी ।'—उनके इस वाक्य के साथ सभी एकबारगी खिलखिला-कर हँस पड़े । जब कुछ हँसी थम गई श्री सिन्हा ने कहा—

'शाम को आपका भोजन हमारे यहाँ रहा ।'

'कहीं एक ही दिन में इतनी ख़ातिर न कर डालें कि दूसरे दिन के लिये कुछ बाकी न रह जाये ।'—कुमारी सावन्त ने मज़ाक के तौर पर कहा । उनका यह वाक्य उमाकान्त को भाया नहीं फिर भी वह चुप रहने वाला न था—

'दावतें केवल ख़ातिर के लिये नहीं परिचय एवं स्नेह की घनिष्ठता के लिये भी होती हैं ।'

'मगर मैं तो कभी किसी को दावत नहीं देती ।'

'दावतें खाती तो हैं ?'—गुलाम हसन ने उमाकान्त की ओर से उत्तर दिया ।

'लोग खिलाते हैं इसलिये खा लेती हूँ ।'

'मगर यह तो और भी बुरा है कि खा लेती हैं खिलाती नहीं हैं !'

'मुझे क्या गर्ज़ पड़ी है —किसी को खिलाऊँ ।'

'लोगों को क्या गर्ज़ है जो आपको खिलाते हैं ।'

'होगी तभी तो खिलाते हैं ।'

'यह आपके अपने सोचने का ढंग है, हो सकता है आपकी गलतफ़हमी ही हो ।'

गुलाम हसन का यह वाक्य सावन्त को तीर की तरह लगा और वह तिलमिला उठीं—

'मगर मौलाना साहब, सवाल तो आपसे नहीं उठा था आप तो यों ही बीच में कूद पड़े ।'

बात बढ़ती देख श्री नानाकर बोल उठे—'अरे भाई, क्यों इस परम्परा को तोड़ने पर उतारू हो गये हैं आप लोग । मुझे महीने में सात-आठ दावतें खाने को मिल जाती हैं इसी बहाने । उसे भी समाप्त करने पर आप तुल गये हैं ।'—और फिर वही अट्टहास ।

श्री सिन्हा जो अब तक चुप थे बोल पड़े—श्री उमाकान्त की दावत का मंतव्य केवल इतना ही है कि हम लोग बैठकर आपस में कुछ विचार-विमर्श कर लेंगे कि कौन-कौन से विषय आप लेंगे। आप नये हैं इसलिये थोड़ा-बहुत यहाँ की कार्य-प्रणाली के विषय में जानना भी जरूरी होगा।'

श्री नानाकर ने अपनी गंजी खोपड़ी को हिलाकर उनकी इस बात का अनुमोदन किया।

'नानाकर साहब आप भी आज खाना मेरे यहाँ ही खायेंगे।'—श्री सिन्हा ने कहा।

नानाकर साहब जैसे इस शुभ सम्वाद की प्रतीक्षा में ही बैठे थे उन्होंने तुरन्त 'हाँ' सूचक सिर हिला दिया।

: ८ :

प्रभा और सन्तू का जी कदमपुरी में काफी रम गया था। इसलिये नहीं कि लखनऊ की सुन्दरता, वहाँ के आराम को मात देने वाली कोई चीज़ यहाँ थी बल्कि इसलिये कि उन्हें अपनी गृहस्थी में पूरी आज़ादी का अनुभव हो रहा था। प्रभा की बहुत आकांक्षा थी कि वह स्वतंत्र इच्छानुकूल अपनी गृहस्थी चलाये और उसके लिये उसे यहाँ पूरी छूट थी।

सन्तू की आकांक्षा थी एकमात्र स्वच्छन्द कार्यकर्ता बनने की, उसका यह हौसला पूरा हो रहा था। वही सन्तू जिसकी प्रभा से अक्सर अनबन हो जाया करती थी अब प्रभा की आँख का तारा बन गया था। फिर प्रभा भी इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि इस परदेश में एक तो नौकर मिलना कठिन है और फिर जाना-बूझा, इसलिये उसने भी अपना अंकुश ढीला कर दिया था। उसके खाने-पीने का पूरा ध्यान रखती। इन दो महीनों में सन्तू का करीब चार पौण्ड वज़न बढ़ गया था।

कहा जाता है स्त्रियाँ पुरुषों के मुकाबले में अपने को परिस्थितियों के अनुरूप शीघ्र नहीं ढाल पातीं किन्तु यहाँ प्रभा के सम्बन्ध में यह पूर्णतः

विपरीत ही था। उसने जितनी शीघ्र अपने को परिस्थितियों के अनुरूप ढाल लिया था उसे देख उमाकान्त को भी आश्चर्य होता।

आठ-दस दिन सरिता की याद में प्रभा की आँखों में आँसू आ जाते पर धीरे-धीरे उसने अपनी उस ममता पर भी काबू पा लिया था। शायद अब वह सोचती थी कि स्त्री पहले पति की होती है फिर सन्तान की।

यही नहीं प्रभा की सोसाइटी भी काफी बढ़ गई थी। प्रारम्भ में तो श्रीमती अग्रवाल तक ही उसका आना-जाना सीमित था किन्तु अब तो श्रीमती सिन्हा से उसकी इतनी बनने लगी थी कि उन्हें देखकर ऐसा लगता था गोया वह सगी बहनें हों। श्रीमती सिन्हा के सातों बच्चे हमेशा उसे घेरे रहते। यद्यपि श्रीमती अग्रवाल को उसकी यह घनिष्ठता नहीं भाती थी फिर भी उनका स्नेह पूर्ववत बना रहा। इसके अतिरिक्त कुमारी कोल, श्रीमती सूद, श्रीमती बागची आदि कितनी ही उसकी सहेलियाँ बन गई थीं। ऐसा लगता जैसे प्रभा के बिना उन्हें चैन ही नहीं।

प्रभा के विचार श्रीमती सिन्हा के प्रति बहुत ही ऊँचे थे। उमाकान्त ने भी देखा जितना स्नेह श्रीमती सिन्हा के हृदय में है उतना किसी अन्य के में नहीं। बिल्कुल घर-सा व्यवहार।

श्रीमती मेहरा और कुमारी सावन्त भी अक्सर आ जातीं और प्रभा भी उनके यहाँ चली जाती पर जब भी जाती श्रीमती सिन्हा और उनके बच्चे अवश्य उसके साथ होते।

एक दिन उमा दिन के वक्त कमरे में लेटा हुआ था कि कुमारी सावन्त आ गई। प्रभा बरामदे में ही बैठी थीं अतएव सावन्त भी वहीं बैठ गई। उमा सोया नहीं था पर सोने का बहाना अवश्य कर रहा था। यह जानकर भी कि सावन्त आई हैं वह लेटा ही रहा। प्रभा और सावन्त में बातें हो रही थीं पर उमा को उसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी इसलिये वह कान दबाये पड़ा हुआ था——सहसा सावन्त की ऊँची वाणी ने उसे चौंका दिया——

'मिस प्रभा, मैं कहती हूँ संसार का कोई जानवर भी इतना स्वार्थी नहीं हो सकता जितना यह पुरुष होता है।'

प्रभा भी बोलने में कम न थी——'मगर पुरुष के बिना इस समाज में नारी का जीना असंभव है।'

'बस आप ही जैसी गृहणियों ने तो इन पुरुषों का दिमाग चौपट कर दिया है जो उनके इतने दिमाग हो गये हैं। यह तो ऐसी जाति है जिसे जूते से सीधा किया जाय तो भी कम नहीं है।'

कुमारी सावन्त के इस अन्तिम वाक्य ने उमा के कान चौकन्ने कर दिये। मिस सावन्त उसकी पत्नी को भड़काने आई हैं या यह सब उसे सुनाकर कह रही हैं अथवा अपने अनुभवों के आधार पर अपने इस विचार को प्रस्तुत कर रही हैं। उसके जी में आया वह उठे और उनकी इस बात का जवाब दे किन्तु कुछ सोच, पड़ा ही रहा मगर उसके कान उसी तरफ लगे थे।

'यह सब आप तभी कह सकती हैं जब तक आपका विवाह नहीं हुआ है। विवाह के पश्चात् शायद आप ऐसा कहने का साहस नहीं करेंगी।'—प्रभा ने कहा।

'विवाह! आपने भी खूब कहा। इस घृणित प्राणी से विवाह! मैं कुत्तों से ब्याह कर लूँगी यह मुझे मंजूर है पर किसी आदमी से नहीं।'

उसकी इस बात पर उमा को हँसी भी आई और क्रोध भी। वह अपने को न रोक सका, उठकर कुछ पूछने को बढ़ना ही चाहता था कि प्रभा ने उसका हार्दिक प्रश्न पूछ उसे पुनः खाट पर लेटने को बाध्य कर दिया।

'मालूम होता है पुरुषों के प्रति आपको बहुत अश्रद्धा हो गई है। बुरा न मानें तो पूछूँ—आखिर क्यों आपको पुरुषों से इतनी घृणा है। क्या कभी किसी पुरुष ने आपके साथ छल किया है?'

'पुरुष की क्या ताकत जो मेरे साथ छल करे।'—रोषपूर्ण शब्दों में सावन्त ने कहा।

'तो आपने पुरुषों के साथ छल किया होगा।'—प्रभा ने बहुत ही नम्र ढंग से व्यंगपूर्ण शब्दों में कहा।

'मैं क्यों किसी से छल करने जाऊँगी।'

'फिर आप इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँचीं?'

'संसार के अनुभवों को सुनकर—देखकर।'

'किन्तु हम लोगों का अनुभव तो ऐसा नहीं है।'

'आप आदर्शवादी स्त्रियाँ पति को देवता के रूप में जो मानती हैं। उनकी पूजा जो करती हैं।'

'किसी का आदर करना तो बुरी बात नहीं है।'

'पर एक ऐसे व्यक्ति का आदर करना जो हमारा निरादर करता हो कहाँ तक ठीक है।'

'हमारी पुरानी परम्परा तो यही कहती है फिर महात्मा गांधी ने भी तो इस युग में इसी तरह की बात कही है।'

'यह सब मन को बहलाने का एक बहाना मात्र है।'

'यदि इसे मान लिया जाये फिर भी बिना पुरुष के समाज कैसे चलेगा। निर्बल स्त्री अकेले क्या कर सकेगी?'

'स्त्री को निर्बल समझना ही हमारी सबसे बड़ी भूल है। अकेली स्त्री समाज को उसी तरह चला सकती है जिस तरह पुरुष। बल्कि उससे अच्छे ढंग से। जिस प्रकार पुरुष स्त्री पर शासन करता आया है उसी प्रकार स्त्री भी पुरुष पर शासन कर सकती है। पुरुष आज स्त्री को एक खिलौना समझकर केवल अपनी वासना की शान्ति का साधन मात्र बनाये बैठा है।'

'पर वासना की आग केवल पुरुष की ही नहीं स्त्री की भी होती है।'

'स्त्री को उसे दबाना पड़ेगा वरना पुरुष हमेशा उस पर राज्य करता रहेगा।'

'प्रकृति पर तो विजय किसी हद तक ही पाई जा सकती है।'

'आखिर मैं कैसे जी रही हूँ, मेरे मन में तो कोई तड़पन, कोई भूख नहीं उठती।'

'कहने को तो मैं भी कह सकती हूँ किन्तु मेरे अन्तर में क्या है इसे कौन जानता है।'—प्रभा ने मिस सावन्त की दलील पर एक गहरी चोट की।

वह तिलमिला उठी। प्रभा की इस विजय से उमा अपने पर काबू न रख सका और बाहर निकल ही पड़ा—

'एक्सीलेन्ट, प्रभा, वन्डरफुल!'

'तो आप भी सब कुछ सुन रहे थे।'—कुमारी सावन्त ने कहा। प्रभा मन-ही-मन मुस्करा रही थी।

'जी हाँ, अपनी बुराई सभी सुनते हैं।'

'पर विजय तो आपकी पत्नी की हुई।'

'अजी इसीलिये तो मुँह दिखाने के काबिल हुआ।'

'वैरी गुड !'—कुमारी सावन्त स्वतः हँस पड़ीं।

तब तक बाजार से घूमकर सन्तू आ गया था। प्रभा ने हुक्म दिया—'जल्दी चाय बनाओ !'

'नहीं, इस वक्त रहने दें।'—कुमारी सावन्त ने कहा।

'अजी आप नहीं पीयेंगी तो क्या हम भी नहीं पीयेंगे।'—उमा ने कहा।

'नहीं पीयें, जरूर पीयें !'

'मैं भी पीऊँगा, प्रभा भी पीयेगी और आप भी पीयेंगी।'

'आपका आपकी पत्नी पर हक़ है वह जरूर पीयें पर मेरी तो जब इच्छा होगी तभी पीऊँगी वरना नहीं।'

'अजी जाने भी दें। एक प्याली चाय जरूर आपके गुस्से को शान्त कर देगी।'—उमा ने कहा।

'ओह यह बात है तब तो जरूर पीऊँगी।'—कुमारी सावन्त हँस पड़ीं।

प्रभा ने कहा—'आप लोग तब तक कुछ बातें करें मैं जलपान बना डालूँ।' प्रभा जलपान बनाने चली गई। उमा कुमारी सावन्त से बातें करने लगा।

'आज आप काफी क्रुद्ध हो गई थीं। मैंने तो सोचा यदि पं० नेहरू दस दिन के लिये आपको अपनी जगह दे दें तो शायद आप सारे पुरुषों को कत्ल करवा डालें जिस प्रकार परशुराम ने एक बार धरती से समस्त क्षत्रियों के विनाश की ठान ली थी।'

'अब छोड़िये इस विषय को और भी संसार में बहुत सी बातें करने को हैं !'—कुमारी सावन्त ने कहा और दोनों अनेक राजनीतिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने में इतने खो गये कि कब उनके सामने चाय आ गई इसका भी उन्हें पता न लगा।

प्रभा ने टोकते हुए कहा—'चाय पी लें फिर जितनी देर चाहें बातें कर करें वरना यह ठण्डी हो जायेगी।'

सब चाय पीने में व्यस्त हो गये।

: ६ :

इन दो महीनों के अल्प समय में उमाकान्त काफी जम गया था। यही नहीं वह प्रत्येक व्यक्ति को काफी अन्दर-बाहर से समझने लगा था। श्री नानाकर तो केवल नाम के प्रधान थे। वास्तविक शासन तो श्री सिन्हा के ही हाथों में था। बाहर से जितना ही अधिक वह अपने को गंभीर, अध्ययनशील और विद्वान व्यक्ति का आकार प्रदान करने की चेष्टा करते उतना ही अन्दर से खोखले हो जाते। यदि कोई उनके पास दस मिनट को बैठ विचार-विमर्श करने लगता तो उसे आश्चर्य होता उन्हें किसने इस पद पर लाकर थोप दिया है। ज्ञान बिलकुल नहीं था किन्तु ज्ञाता वह सभी विषयों के बनते। बस अगर उनकी कोई खूबी थी तो वह थी उनकी सीधाई, उनका भोलापन। उन्हें देश से कम अपनी जाति से अधिक प्रेम था। जो भी हो उनकी इस कमजोरी का केवल दो ही व्यक्ति फायदा उठा पाते थे। एक तो श्री सिन्हा जिनकी सलाह के बगैर वह एक कदम आगे नहीं बढ़ा सकते थे। कलम सिन्हा की होती, दिमाग सिन्हा का होता और नाम श्री नानाकर का। कुमारी सावन्त उनकी हमजाति होने के नाते हर प्रकार की सुविधाओं का उपभोग करतीं। कभी-कभी उमाकान्त को स्वतः हैरत होती कि एक ऐसी संस्था में जहाँ देश के लिये सच्चे सिपाही तैयार करने का काम होता हो वहाँ इस प्रकार के व्यक्तियों को रख लोग क्यों अपना समय और पैसा नष्ट करते हैं। जो भी हो वह भाग्यवादी थे और भाग्य के सहारे जी रहे थे।

हाँ तो सिन्हा की खूब चलती थी। उनकी स्थिति वही थी जो इंगलैण्ड में प्रधान मंत्री को होती है। समस्त कर्मचारीगण उनका लोहा मानते थे। अक्सर श्री नानाकर स्वतः उनके द्वारा डाँटे जाते देखे गये थे। यह कोई राजनीति का अखाड़ा तो नहीं था पर राजनीति खूब चलती थी। श्री सिन्हा का सबसे तगड़ा दल था। प्रारम्भ में उमाकान्त ने अपनी समस्त श्रद्धा श्री नानाकर के प्रति प्रदर्शित की किन्तु उसका प्रभाव यह हुआ कि उसे अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। अनेक ऐसे मौके आये जब श्री नानाकर को सहयोग देने में उसे अन्य सहयोगियों का

विरोध सहन करना पड़ा। वह इससे कभी नहीं घबड़ाता यदि श्री नानाकर स्वयं उसका विरोध और नुकसान कर बैठते। जो हो अन्त में हारकर उसने भी श्री सिन्हा के हाथों अपने को सौंप दिया और श्री सिन्हा ने मन्द मुस्कान के साथ उसे अपनाया——

'वह तो मूर्ख आदमी है, उसे खुद कुछ नहीं आता दूसरों के सहारे जीता है। आपकी क्या मदद करता वह।'

उमा ने सिर झुका उनकी बातों का समर्थन किया।

श्री गुलाम हुसन एक तो बहुत खुशमिजाज और मिलनसार व्यक्ति थे दूसरे काफी अनुभवी और शिक्षित इसलिये उमाकान्त की उनसे काफी बनती। फिर दोनों ही लखनऊ के थे इसलिये उनकी दोस्ती दाँतकाटी रोटी के समान गहरी हो गई थी। यद्यपि श्री अग्रवाल को उमाकान्त की यह दोस्ती नहीं भाती थी। उनकी नजर में मुसलमान मुसलमान ही होता है——उसका क्या विश्वास। मगर उमाकान्त नया था, पढ़ाने का अनुभव नहीं था अतएव यदि वह कुछ सीख सकता था तो श्री गुलाम हुसन से ही।

श्री गुलाम हुसन की श्री अग्रवाल से अक्सर तू-तू मैं-मैं हो जाती। श्री नानाकर को भी वह फूटी आँखों नहीं सुहाते थे मगर काफी तेज़ थे इसलिये किसी की कुछ न चल पाती। श्री सिन्हा का उन पर काफी हाथ था। मिस सावन्त से भी उनकी अच्छी पटती थी। हँसी-मज़ाक भी काफी चलता था।

श्री सिन्हा में एक खूबी थी। वह बहुत ही मँजे हुए खिलाड़ी थे। उनके दाँव-पेंच इतने सटीक होते कि अक्सर दो लड़ते रहते और वह उनकी इस कमजोरी का फायदा उठाते। दो बिल्लियों की लड़ाई में उनका बन्दर-सा हाथ रहता। एक रोटी के पीछे दो बिल्लियाँ लड़ जातीं, वह फैसले के लिये आते, सारी रोटी उनके पेट में जाती और दोनों बिल्लियाँ टकटकी बाँधे देखती रह जातीं।

शिक्षणार्थियों पर भी उनका सबसे अधिक रोब था। अपनी दूरदर्शी चाल से उन्होंने अपनी काबलियत का भी काफी सिक्का बैठा लिया था।

श्री गुलाम हसन अपने व्यवहार के लिये प्रशिक्षणार्थियों में मशहूर तो थे ही साथ-ही-साथ सबसे अच्छे शिक्षक माने जाते थे इसलिये उनका भी काफी आदर था। वह आदरपसन्द आदमी नहीं थे इसलिये दोस्ताना ही रखते।

उमाकान्त की गणना साधारण शिक्षकों में भले ही थी पर अपने स्वभाव, व्यवहार और साहित्यिक ज्ञान के कारण उसे लोग सबसे अधिक चाहते।

श्री सिन्हा प्रोपेगेण्डा-पसन्द आदमी थे, वह चाहते थे हर एक की जबान पर उनकी काबलियत की छाप छा जाये इसलिये उनके लिये जरूरी था कि गुलाम हसन और उमाकान्त का पूर्ण सहयोग पा सकें। श्री अग्रवाल अपने शुष्क व्यवहार के कारण विद्यार्थियों में आलोचना के विषय बने रहते इसलिये श्री सिन्हा को उनसे कोई विशेष मतलब न था।

श्रीमती मेहरा की तो बात ही निराली थी। बोल-चाल में इतनी मृदुल थीं कि सभी उन्हें दीदी कहते। निहायत व्यवहारकुशल थीं। कवयित्री होने के नाते शीघ्र ही प्रसिद्धि और लोगों के मन पर काबू पा लेना उनके बाँयें हाथ का खेल था। जहाँ उनके कोमल कंठ से मधुर कविता की धारा बहती लोग मन्त्र-मुग्ध हो जाते। उन्हें इससे अधिक और किसी चीज़ से मतलब नहीं था। नाज-नखरों में भी उनके एक अन्दाज़ होता। शरीर की बनावट में तो इतनी कोमलता नहीं थी पर उनके व्यवहार में जरूरत से ज्यादा कोमलता टपकती थी। उमाकान्त भी कविताएँ लिख लेता था इसलिये उमाकान्त के प्रति उनका व्यवहार अत्यन्त मृदुल था। बिल्कुल बहिन-सा स्नेह प्रदान करने की चेष्टा करतीं। यही नहीं वक्त-बेवक्त बुजुर्ग बन कुछ सीख भी दे बैठतीं।

मिस सावन्त के तो कहने ही क्या! वह समस्त नगरी में वार्ता का एक प्रमुख विषय थीं। उनका व्यवहार इतना अहं से भरा था कि किसी के मान-अपमान की उन्हें चिन्ता न रहती। गुलाम हसन तो अक्सर कह बैठते—'हवा से लड़ती है।'

सभा-सोसाइटी में किस तरह बोलना-उठना चाहिये इसकी भी उन्हें परवाह न रहती। जहाँ मर्दों से उसे सख्त नफरत थी वहीं अपने से अधिक पढ़ी-लिखी अनुभवी लड़कियों पर उन्हें रौब डालना भी खूब आता था।

उनके चरित्र का भी उन्हें ही ध्यान रखना पड़ता था। आये दिन जो लड़की उनकी तानाशाही के विरुद्ध आवाज़ उठाती अपने चरित्र पर तोहमत का एक गहरा धब्बा लगा पाती। फिर थर्ड क्लास बी० ए० होते हुए भी अपने से अधिक पढ़ी-लिखी लड़कियों पर प्रभाव रखना कोई मामूली बात नहीं होती।

अपनी माँ की उम्र की लड़कियों से 'टाँग तोड़कर रख दूँगी' कहने में भी उसे तनिक संकोच न होता। उसके विरुद्ध होकर भी लोग उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे क्योंकि वह श्री नानाकर की हमजाति थीं। नानाकर उसकी कोई बुराई नहीं सुन सकते थे। सिन्हा से उनका क्या सम्बन्ध था यह तो नहीं मालूम फिर भी अक्सर श्री सिन्हा उनकी शिकायत करने वालों को दण्ड देते देखे गये थे।

प्रारम्भ में उमाकान्त पर सिन्हा और कुमारी सावन्त के चारित्रिक दृढ़ता की ऐसी छाप पड़ी कि वह उन्हें बहुत ही आदर की दृष्टि से देखने लगा। श्री सिन्हा तो अक्सर ऐसे किस्से भी सुनाते जहाँ खूबसूरत से ख़ूबसूरत जवान लड़कियाँ उन्हें अपना सर्वस्व समर्पण करने को तुल जातीं और वह उन्हें उनकी भूल से हटा चरित्रवाद का उपदेश दे दूर हो जाते। गुलाम हसन उनकी इन कहानियों को सुन मुस्कराते, इधर-उधर आँखें नचाते पर उमाकान्त उन्हें श्रद्धा भरी दृष्टि से देखने लगता।

श्री खत्री तो एक मस्त जीव थे। उनकी सुन्दरता की खूब धाक थी। यद्यपि मिस सावन्त का व्यवहार उनके प्रति भी वैसा ही था जैसा कि अन्य व्यक्तियों के प्रति किन्तु उसकी आँख से साफ प्रकट होता था कि वह भी उनके रूप का रस पान करना चाहती हैं। अनेक छात्रायें भी श्री खत्री को लालसा भरी दृष्टि से देखतीं पर उन्हें इस काम के लिये कतई फ़ुर्सत नहीं थी। अपने काम से काम रखने वाले ज़रूर थे पर दिल के गहरे भी काफी थे। व्यवहारनिपुण इस कदर थे कि यह बखूबी जानते थे कि किस तरह सबसे बनाकर रखनी चाहिये। सुडौल शरीर, बोलचाल का सुन्दर ढंग, रहन-सहन और पहनाव-ओढ़ाव का बेहतरीन तरीका किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को बढ़ाने में सहायक तो होता ही है। मिस सावन्त से अक्सर वह भद्दी मजाक भी कर बैठते मगर वह चुप रह जातीं। उसे तो बुरा नहीं

लगता था पर श्री सिन्हा अवश्य इस बात को सहन नहीं कर पाते थे। मालूम नहीं क्यों सिन्हा ऊपरी दिखावे में तो उनसे खुश रहते पर अन्दर-ही-अन्दर खत्री के कट्टर विरोधी थे।

वह उमाकान्त और गुलाम हसन को अक्सर समझाते—'दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं जो ऊपर से खूबसूरत और अन्दर से बदसूरत होते हैं। बाहर से गोरे अन्दर से काले होते हैं। मिसाल के तौर पर खत्री को ही देखें निहायत खूबसूरत, भला, कल्चर्ड नौजवान है पर अपनी आदत से बाज नहीं आ पाता। उधर तुम लोगों से गहरी दोस्ती जताता है और इधर मुझ से, नानाकर से, तुम्हारी शिकायतें करता है। यह तो मैं हूँ जो एक कान से सुन दूसरे कान से निकाल देता हूँ वरना और कोई होता तो शायद आपका नुकसान ही कर बैठता। मैं उसे भली भाँति जानता हूँ इसलिये उनकी चालबाजियाँ काम नहीं आ पातीं। ऐसे लोगों से हमेशा बचकर रहना चाहिये।'

उमाकान्त और गुलाम हसन निहायत गौर से उनकी बात को सुनते पर बाद में उमा तो गंभीरतापूर्वक इस विषय पर सोचता, परिस्थिति को समझने की चेष्टा करता किन्तु गुलाम हसन के चेहरे पर वही शरारत भरी मुस्कराहट होती।

कभी-कभी उमा सोचता कहाँ किस कबाड़खाने में आ फँसा है पर प्रभा शीघ्र ही उसे ढाढस बँधाती और चुपचाप केवल अपने काम-से-काम रखने की सलाह देती।

: १० :

शरद् ऋतु का प्रारम्भ था। सितम्बर का अन्त हो रहा था किन्तु अक्तूबर के आने में अभी देर थी। छात्रों का दल स्टडी टूर पर शिमला जा रहा था। इस दल का नेता था उमाकान्त और उसकी सहायता के लिये, स्त्रियों की देख-रेख के लिये मिस सावन्त।

ग्रीष्म के पश्चात् सुहावनी वर्षा वन-प्रदेश और पर्वत-चोटियों को नव परिधान में आवेष्टित कर अनुपम सौन्दर्य की अवतारणा करती है। शिमला की पहाड़ियों की ओर शोर और धुएँ के बीच गाड़ी रुकती और बढ़ती चली जा रही थी। कालका का मैदान काफी दूर छूट गया था। नीचे के गढ़ों के बीच पहाड़ियों की सीढ़ीनुमा भूमि पर हरी कालीन-सी बिछी हुई थी। जैसे-जैसे गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी चतुर्दिक प्रकृति के सौन्दर्य का अवलोकन विस्मयपूर्ण होता जा रहा था। पर्वतों की वनराजि, यत्र-तत्र निनाद करते हुए झरनों के साथ हरीतिमा से युक्त खेत मन में असीम आनन्द-लहरियों को आन्दोलित कर रहे थे। विविध प्रकार की पर्वतीय सुषमा सबको चकित-विस्मृत कर रही थी। पर्वत की गहरी खाइयों की ओर दृष्टि जाती तो एक अदृष्ट आशंका से मन काँप उठता। उमाकान्त और कुमारी सावन्त फर्स्ट क्लास में थे बाकी लोग थर्ड में।

एक स्टेशन पर मिस सावन्त ने कुछ फल और मिठाइयाँ खरीदीं। उनका उचित उपयोग हो सके इसलिये उमाकान्त ने चाय मँगवा ली। गाड़ी काफी देर रुकती थी। ट्रेनीज प्लेटफार्म पर चहल-कदमी कर रहे थे। दोनों चाय, फल और मिठाई के खाने में व्यस्त थे। पर्वत की अनेक गुफाओं के बीच से नाचती, थिरकती, टेढ़ी-मेढ़ी आगे बढ़ती गाड़ी को देख हैरत तो हो ही रही थी साथ ही इस दुर्गम स्थल में रेलवे लाइन निकालने वालों के कौशल-परिश्रम को देख एक बार मुख से अनायास ही निकल पड़ता—'धन्य है आज का विज्ञान।'

पर्वतराज हिमालय भी आज के विज्ञान के आगे झुका-सा नजर आ रहा था। अनेक पहाड़ी निवासियों के निर्जन-भयंकर स्थानों में आवास को देख हैरत होती। उनके साहस और शौर्य पर आश्चर्य होता। उमा और मिस सावन्त के वार्ता के विषय थे प्रकृति और विज्ञान! इस वार्ता के बीच वह एक दूसरे से काफी खुलते जा रहे थे।

गाड़ी छोटी-बड़ी एक सौ तीन सुरंगों के दिलों को चीरती हुई बढ़ती जा रही थी। बडोग स्टेशन भी अब पीछे छूट गया था। चीलों के वृक्ष की साँय-साँय वाली वायु गाड़ी के शोरगुल को अपने में सिमेट लेने की चेष्टा कर रही थी।

गाड़ी शिमला पहुँची और होटल के एजेन्टों ने उन्हें घेर लिया। शीघ्र ही एक होटल में उमा ने आठ कमरे ले लिये और अस्सी व्यक्ति उसी में रहने को थे। बीस महिलायें थीं अतएव दो कमरे उनके लिये थे और साठ पुरुषों के लिये बाकी के छः कमरे। उमा पुरुष विद्यार्थियों के साथ ठहर गया और मिस सावन्त महिलाओं के साथ।

भारी बोझ को पीठ पर लादे कुली आगे-आगे थे और लोग पीछे-पीछे। पैसे के लिये इन्सान क्या कुछ नहीं करता। यह पर्वतीय मार्ग जहाँ अकेले अपने शरीर के बोझ को ही सँवारकर चलना मुश्किल होता है यह कुली बेचारे मनों बोझ पीठ पर लादे हाँफते बढ़े जा रहे थे। यही बोझ उनके जीवनाधार हैं। इन्हीं बोझ को उठाने के लिये उनमें होड़-सी लग जाती है। और हम हैं कितने स्वार्थी कि अपने ऐशोआराम के लिये मनुष्य को जानवर का रूप देने में भी संकोच नहीं करते। कभी कगारे में खड़े हो यदि वह कुछ क्षणों के लिये अपनी पीठ को सीधा भी करना चाहते तो मिस सावन्त गरज पड़तीं—'हमें जल्दी है।'—क्या जल्दी है! केवल घूमने की। उनका दम फूल रहा था, उस सर्द हवा में भी शरीर से पसीना छूट रहा था फिर भी उनके चेहरे में दृढ़ता थी। पैसे मिलने की आशा में उनके हृदय में उन्माद था।

मन को असीम आनन्द की अनुभूति करानेवाला शीतल पवन, मन को मोह लेने वाला प्रकृति का यह सुन्दर पर्वत और उसी के बीच में पेट के लिये मजबूर एक गरीब इन्सान की लाचारी यह सब कुछ नदी के दो किनारे के समान लग रहे थे। एक किनारा लहलहा रहा था और दूसरा टूट रहा था।

शाम का समय था और शिमला की संध्या इन्द्रधनुषी शोभा को मात कर रही थी। शिमला की सड़कें रंगीन हो उठी थीं। सजी-सजायी पैसों से खेलती युवतियों के स्वरूप तथा महिलाओं-पुरुषों की उत्साह-उमंग की तरंग देखते ही बन रही थी। स्कैण्डल प्वाइन्ट पर तो मानो स्वर्ग उतर आया था। युवतियों की रंग-बिरंगी साड़ियाँ हवा में फहरा रही थीं। ओवरकोटों में अपने शरीर को ढके लिपिस्टिक, पाउडर क्रीम से सजाये अपने चेहरों से वह पुरुषों को घायल करने की चेष्टा कर रही थीं। युवक-

युवतियों के युग्म प्रेमालाप करते शिमला की शीतल वायु में इस प्रकार आत्मविभोर हो घूमते दृष्टिगोचर हो रहे थे मानो किसी सौन्दर्य-लोक में विचरण कर रहे हों।

अपने कुचों के प्रदर्शन की युवतियों में होड़-सी लगी थी। पैसे के बल पर बनाये गये नुकीले कुचों को वह इस तरह दिखाती चल रही थीं गोया इसी में उनकी शान हो। कुछ दीवाने तितलियों को हाथ में सिग्रेट इस तरह घूम रहे थे जैसे वह आज पूर्णत: अपने को तृप्त कर लेना चाहते हों जाने कल अवसर मिले या नहीं। इस सर्दी में भी बारीक जार्जट की साड़ियों से वह अंग-प्रत्यंग का प्रदर्शन करना चाहती थीं।

कभी-कभी वायु के झोंको में वह साड़ियाँ उनसे इस बुरी तरह लिपट जातीं कि पुरुष की वासना का जागृत होना स्वाभाविक हो जाता। इस दृश्य को देख यदि कहा जाय कि स्त्री प्रथम पुरुष को काम के प्रति प्रेरित करती है तो अनुचित न होगा।

यह सब कुछ देख मिस सावन्त ने एक गहरी साँस ली और उमा की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। आँखें मिलते ही उसकी आँखें नीची हो गई।

काफी शाम हो गई थी इसलिये तय हुआ कि आज केवल घूमने का ही कार्यक्रम रहे अतएव होटल में नहा-धो लोग घूमने निकल पड़े। मिस सावन्त उमा के साथ हो लीं। उन्होंने साथ ही 'बालजी', में खाना खाया और काफी देर तक माल रोड, स्कैण्डल प्वाइन्ट, लोवर बाज़ार, लक्कड़ बाज़ार आदि घूमने के पश्चात् थक 'रिट्ज' में एक बेंच पर बैठ गये। आज मिस सावन्त में वह तेज़ी न थी बल्कि एक थकान थी। उनकी राय हुई सैकिण्ड शो ही देख लिया जाये। उमाकान्त और वह रिवोली में एक हिन्दुस्तानी तस्वीर देखने को बैठ गये। टिकट बाक्स का था और उमा के लाख मना करने पर भी मिस सावन्त ने ही टिकट खरीदा क्योंकि निमंत्रण उन्होंने दिया था।

पिक्चर शुरू होने में कुछ देर थी। उमा ने मिस सावन्त से कहा—'आप बहुत थकी नजर आ रही हैं।' उत्तर में केवल एक हल्की-सी मुस्कराहट मिस सावन्त के चेहरे पर दिखलाई पड़ी और उन्होंने धीरे से एक अँगड़ाई ली।

'चाय मँगवाऊँ ?'

'जी नहीं ।'

'कोको कोला ?'

'कुछ भी नहीं ।'

'कुछ तो ?'

'कुछ भी नहीं, बस बैठे रहिये ।'

'अधिक जोर देने की हिम्मत भी नहीं पड़ती !'

'क्यों ?'

'कहीं आप बिगड़ जायें, आपको बिगड़ते कितनी देर लगती है !'

'तो आप भी डरते हैं ?'

'मैं तो सबसे ज्यादा डरता हूँ ।'

'मगर यह आपकी भूल है । मैं उतनी बुरी नहीं हूँ जितना आप सब सोचते हैं ।'

'पर आपको पुरुषों से घृणा तो है ही ।'

'सब से नहीं ।'—उन्होंने यह वाक्य आँखें नीची कर धीरे से कहा । उमा की हिम्मत बढ़ी—

'यदि आप नाराज न हों तो एक बात पूछूं मिस सावन्त !'

'क्या ?'

'यही पुरुषों से क्यों नफरत करती हैं ?'

'पुरुष का एतबार कभी नहीं किया जा सकता । उस पर विश्वास करना भूल है ।'—उनकी आँखें लाल थीं ।

'यह आप अपने अनुभव के आधार पर कह रही हैं अथवा दूसरों के अनुभवों के आधार पर ?'

'यह एक व्यक्तिगत बात है मिस्टर उमाकान्त इसे नहीं पूछें तो अच्छा है ।'

'अच्छा यह बात नहीं पूछता पर एक बात पूछूँ—क्या श्री सिन्हा आपको नहीं चाहते ?'—मेरे इस प्रश्न ने मिस सावन्त को चौकन्ना कर दिया । वह सतर्क हो बोलीं—'आपसे यह बात किसने कही ?'

'किसी ने नहीं कही है पर एक लेखक होने के नाते कुछ अपने भी अनुमान

से काम तो लेता ही हूँ ।'

'तो आप उतने सीधे नहीं हैं जितना हम लोग आपको समझते हैं !'—मिस सावन्त ने पैर फैलाते हुए कहा ।

'क्या मैंने कुछ अनुचित कह दिया है ?'

'यदि कोई मुझे चाहे तो मैं क्या कर सकती हूँ !'

'तो आप क्या श्री सिन्हा को नहीं चाहतीं ?'—

'उमा बाबू, ईश्वर के लिये इस टापिक को बन्द करिये वरना मैं चली जाऊँगी ।'—तब तक हॉल की बत्तियाँ बन्द हो गई थीं और मिस सावन्त का सिर उमाकान्त की ओर ढुलक गया था । हॉल में निस्तब्धता छा गई । मिस सावन्त की छाती धड़क रही थी । साँस तेजी से चल रही थी । सामने पर्दे पर नायिका अपने नायक को खोजती हुई पहाड़ों-जंगलों से प्रश्न कर रही थी सहसा नायक के सुरीले गायन—'हम तड़पते हैं अकेले इन्तजारी में तुम्हारे' ने उसके थके पैरों में जान डाल दी । काँटों पर नंगे पैरों दौड़ती वह नायक के पास पहुँच गई । वह उसके चरणों पर गिर पड़ी । उसके अंग-अंग से रक्त का प्रवाह हो रहा था । नायक ने उसे अपने हृदय से लगा लिया । हॉल में दस आने वाले दर्जे में आवाज गूँज उठी—'वह मारा ! वह पकड़ा !'

उमा ने घूमकर देखा सावन्त की कोहनी उसकी कोहनी से टकरा रही थी और आँखें पर्दे पर गड़ी थीं । उमा ने आँखें फेर लीं और चित्र देखने लगा । सावन्त का कन्धा उसके कन्धे से आ लगा—

'कितना दर्दनाक दृश्य है !'

'हाँ !'—उमा ने एक छोटा-सा उत्तर दिया ।

इन्टरवैल हुआ । उमा ने बैरा को चाय लाने को कहा । चाय पीते-पीते वह उसी फिल्म के विषय पर विचार-विमर्श कर रहे थे ।

'प्रेम में लोग कितने उतावले हो जाते हैं ।'—मिस सावन्त ने कहा ।

'किन्तु इसकी पीड़ा में भी लोग सुख का अनुभव करते हैं ।'

'मैं तो प्रेम को भी केवल कामुक सुख का साधन मात्र समझा करती हूँ चाहे इसके लिये कितनी ही बड़ी आदर्श की दीवार क्यों न खड़ी की जाय ।'

'कम-से-कम आज को सामाजिक व्यवस्था में मैं भी आपकी इस दलील

से सहमत हूँ। यदि ऐसा न हो तो लोग क्यों इतनी पीड़ा को उठाकर भी आगे बढ़ने की चेष्टा करें ?'

'आपके अन्तिम वाक्य से मैं डिफर करती हूँ।'

'यदि आप क्षमा करें तो मैं स्पष्ट शब्दों में कहूँगा कि यदि ऐसा न हो तो क्यों कोई स्त्री किसी पुरुष से समागम के लिये तत्पर हो। जब उसका प्रेमी उसे अंक में ले मसलता है, रौंदता है उसे आनन्द ही आता है।'

हॉल की बत्तियाँ बुझ गई, बैरा चाय के पैसे ले चला गया। इस बार भी मिस सावन्त ने ही पैसे दे दिये और उमा के वाक्य का कोई उत्तर न दे सकीं। उसकी कोहनी और कन्धा दोनों ही उमा से टकरा रहे थे। धीरे-धीरे उसके पैर भी उमा के पैरों से आ मिले पर उमा बुत बना सब कुछ महसूस कर रहा था, हिल नहीं रहा था।

वही उमाकान्त जो तीन महीनों में कुमारी सावन्त को नहीं पहचान सका था, आज कुछ घण्टों में उसे अच्छी तरह से पहचान गया। वह जितनी ही ऊपर से कर्कश थी अन्दर से उतनी ही कोमल। ऊपर से जितनी कठोर थी अन्दर से उतनी ही मुलायम। वह पुरुषों से इसलिये नफरत करती थी क्योंकि उसके साथ विश्वासघात हुआ था। श्री सिन्हा उसकी इस कमज़ोरी का फायदा उठाना चाहते थे पर संसार से छिपाकर। श्री सिन्हा उसे केवल अपनी वासना की शान्ति का साधन मात्र बनाना चाहते थे। वह उनकी ओर आकर्षित नहीं थी क्योंकि उनके पास आकर्षण की कोई वस्तु नहीं थी। नारी कोमलता चाहती है, भोलापन चाहती है और यह दोनों ही उनसे कोसों दूर थे। नारी यदि रूप नहीं पाती तो कला की ओर दौड़ती है और वह कला से शून्य थे। यदि नारी पुरुष की केवल लियाकत पर ही मोहित हो सकती तो प्लैटो, स्पेनोज़ा, स्पेन्सर जैसे प्रसिद्ध दार्शनिक कभी अविवाहित न रह पाते। वह इस बात को अच्छी तरह जानती थी।

श्री खत्री के रूप और भोलेपन की ओर वह अवश्य आकर्षित थी किन्तु जानती थी वह ऊपर से जितना ही कोमल है अन्दर से उतना ही छली-कपटी। इसी कोटि के पुरुषों के आधार पर ही उसने समस्त पुरुष वर्ग के प्रति एक घृणा का भाव पैदा कर लिया था।

गुलाम हसन को वह खूब अच्छी तरह जानती थी। वह जानती थी

वह एक निहायत चालाक आदमी है उससे किसी प्रकार की 'सिन्सियरिटी' की उम्मीद नहीं की जा सकती थी। वह एक मँजा हुआ खिलाड़ी था जिसके लिये स्त्री एक खिलौना थी जिसे उसी की कीमत पर खेलकर फेंक देना उसका सिद्धान्त था।

उमाकान्त में उसने एक कोमलता और 'सिन्सियरिटी' की प्रवृत्ति पाई थी। उसमें कला फूट-फूटकर भरी थी पर वह जानती थी वह इतना अबोध और सरल है कि उसके लिये उसे तैयार करना पड़ेगा और यही कारण था कि अन्य व्यक्तियों के मुकाबले में वह उससे अधिक स्नेह करती थी पर अपनी कमजोरी का प्रदर्शन कर वह स्वतः कमजोर नहीं बनना चाहती थी। वह नहीं चाहती थी कि वह अपने को किसी पुरुष के आगे पराजित घोषित करे।

उमाकान्त इस बात को अच्छी तरह जानता था कि उसका क्या कर्त्तव्य है फिर प्रभा के आगे सावन्त कुछ भी तो नहीं थी। केवल किसी स्त्री का युवा होना ही यदि किसी पुरुष के आकर्षण का केन्द्र होता है तो वह केवल वासना की भूख के ही कारण और यह भूख उसे नहीं थी फिर भी उसका हृदय कोमल था, किसी का हृदय तोड़ना उसे नहीं आता था। उसे खेल सूझा और उसने सोचा क्यों नहीं सावन्त की इस पराजय का उपभोग कर उसे सही मार्ग से लगा दिया जाये। यही सोच उसने कुर्सी से अपने हाथों को ढीला कर दिया। उसका हाथ सावन्त की गोद में था उस पर उसकी नासिका से निचली गर्म साँस पड़ रही थी। वह तनिक भी नहीं हिली-डुली।

: ११ :

आज के युग में मनुष्य की उतनी महत्ता नहीं रही जितनी धन की। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्राचीन युग में धन का कोई मूल्य ही न था किन्तु अन्तर इतना अवश्य था कि उस युग में धन का उपयोग समस्त मनुष्य

समुदाय के लिये होता था और आज के युग में केवल कतिपय व्यक्तियों के सुख के लिये। गरीब सुखी इसलिये नहीं है कि उसके पास धन नहीं, मध्यम-वर्ग सुखी इसलिये नहीं है कि जो कुछ धन उसके पास है उससे पेट चलना भी मुश्किल है। धनवान सुखी इसलिये नहीं है कि धन की भूख कभी नहीं मिटती। समाज-सेवक भी इसके हाथ बिक चुके हैं। प्रोफ़ेसर इसलिये पढ़ाते हैं क्योंकि उन्हें धन प्राप्त करना है। नेता इसलिये गला फाड़कर चीखते हैं कि वह उस पद को पहुँच सकें जहाँ लक्ष्मी उनकी बन सके। डाक्टर का कृपा-पात्र वही मरीज़ हो सकता है जिसके पास धन है। अर्थ-शास्त्रियों ने इसीलिये धन को केवल दो भागों में बाँटा है—चल धन और अचल धन जिसे उचित शब्दों में हम चल पूँजी और अचल पूँजी कहते हैं।

किन्तु साहित्यकारों और विद्वानों को अर्थशास्त्रियों के इस विभाजन से संतोष नहीं हुआ। उनकी दृष्टि में सबसे प्रमुख धन वह छोड़ गये हैं और वह है चरित्र धन। चरित्र धन को उन्होंने तीन भागों में बाँटा है—शील धन, शक्ति धन और सौन्दर्य धन। जिस व्यक्ति में इन तीनों धनों का सामंजस्य हो वही सच्चा धनवान है। संत कबीर इन सब से आगे बढ़ गये—

गो धन, गज धन, वाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान॥

इस प्रकार धन के कितने रूप हैं इसका अभी तक निर्णय नहीं हो सका है पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि धन वह वस्तु है जो सबको सुलभ नहीं। इसकी अधिकता व्यक्ति को विशेषता प्रदान करती है।

बिड़ला, टाटा अधिक धन के कारण ही विख्यात हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर विद्या धन के लिये प्रसिद्ध थे। भगवान रामचन्द्र शील, शक्ति और सौन्दर्य धन के कारण ही पूजे जाते हैं। अनेक वैदिक युग के ऋषि-मुनि आध्यात्मिक धन के कारण आज भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

धन में यदि आकर्षण न होता तो नेपोलियन, सिकन्दर, हिटलर आदि क्यों युद्ध-ताण्डव में भाग लेते। अंग्रेज़ क्यों सात समुद्र पार भारत में आ बसते। अमेरिका और रूस आज क्यों विश्व के दो प्रमुख ब्लाक बन जाते।

राम-रावण युद्ध और पृथ्वीराज रासो की रचना भी तो स्त्री धन के कारण ही हुई थी। पर इन सब धन को छोड़ सबसे आगे बढ़ गया है आज के युग में सौन्दर्य धन। इसकी टक्कर में आज कोई धन नहीं आता। यदि सौन्दर्य है तो सारे धन स्वतः एकत्रित हो जायेंगे। एक फिल्म अभिनेत्री भले ही पढ़ी-लिखी न हो। किसी अच्छे परिवार से उसका ताल्लुक न हो पर उसके पास क्या कुछ नहीं होता। कितने ही राजा-महाराजा, कवि-लेखक, साहित्यिक-असाहित्यिक, नेता-दार्शनिक उसके रूप-दर्शन के लिये, रूप-पान के लिये, अपना क्या कुछ नहीं निछावर कर बैठते। एक बार किसी प्रसिद्ध नेता की सभा में आने वालों की संख्या में भले ही कमी हो जाये मगर क्या मजाल है कि उस प्रसिद्ध अभिनेत्री के दर्शन हेतु इतनी भीड़ न एकत्रित हो जाये जिससे पुलिस को लाठी चार्ज करनी पड़े। लोगों को सिर फोड़वाना कबूल है पर उसके दर्शन से वंचित रहना हर्गिज़ नहीं।

उसका भाषण मोटे अक्षरों में छपता है, उसका चित्र रंगीन होता है। फिर जिसके पीछे अनेक विद्वान पागल हो घूमते हों वह स्वतः विदुषी कैसे नहीं हो सकती। रुपया तो उसके लिये पानी होता है और इस पानी को बिना मूल्य के कितने ही धनी पुरुष सप्लाई करते हैं। इसे अपना सौभाग्य मानते हैं कि उसके चरण एक बार उस पानी से धुल जायें और वह चरणामृत पा सकें।

गुलाम हसन भी इसी युग में जन्मे थे अतएव विद्वान होते हुए भी वह सौन्दर्य-धन के उपासक थे। उपासक तो सिन्हा भी थे पर परिस्थितियों से लाचार थे। वह नहीं चाहते थे कि समाज उनका सच्चा स्वरूप देख सके। उनमें अन्तर इतना ही था कि एक खुले रूप से अपनी इस कमज़ोरी का प्रदर्शन करना चाहता था, दूसरा लुक-छिपकर।

कहा जाता है कि राष्ट्र की उन्नति मुख्यतः बौद्धिक और चारित्रिक उन्नति पर ही निर्भर करती है पर जब राष्ट्र-निर्माताओं में ही इसका अभाव हो तो वह देश कहाँ तक आगे बढ़ सकेगा इसकी कल्पना हर साधारण व्यक्ति कर सकता है। जो राष्ट्र आज आर्थिक बौद्धिक दृष्टि से गिरा नज़र आ रहा हो वही कल आध्यात्मिक शक्तियों के जागृत होने पर एक महान् राष्ट्र बन सकता है, पर इस शक्ति का जागरण सौन्दर्य-धन के बूते कभी नहीं

हो सकता। विशेषत: उस सौन्दर्य-धन के सहारे जो केवल रूप-रंग चेहरे की बनावट, सज-धज और लिपिस्टिक-रूज तक ही सीमित हो।

यदि किसी पर गुलाम हसन की नजर लगी तो लगकर ही रह गई। मगर कुछ उनका ऐसा दुर्भाग्य था कि जितने ही वह सौन्दर्य के उपासक थे उतना ही सौन्दर्य उनसे दूर भागता।

एक बार सिन्हा ने कहा, 'अमां क्यों गंगा के किनारे चलते-चलते इधर-उधर फिसल जाते हो?'

'सिन्हा साहब, चलता तो गंगा में ही गोता लगाने को हूँ पर क्या करूँ धर्म की आड़ में पाप करने वाले इतने बढ़ गये हैं कि पैर फिसल ही जाते हैं।'

'यदि आदमी रूप का पुजारी बने तो अच्छी तरह बने, वरना मेरी तरह सन्यास ले लें।'

'जनाब बन्दे को तो आम से मतलब है, उसमें मिठास होनी चाहिये, फिर आपकी तरह सन्यासी बनने से तो भगवान बचाये।'

'अजीब दिमाग के आदमी हो।'

'मजबूरी सब कुछ कर देती है सिन्हा साहब।'

'भाई अपने राम तो दुनिया के किसी चक्कर में ही नहीं रहते।'

'यह तो मैं भी देखता हूँ।'—गुलाम हसन ने व्यंग भरे शब्दों में कहा।

'तो क्या समझते हो मैं कोई गलत टाइप का आदमी हूँ?'

'यह मैंने कब कहा, मगर होशियार से होशियार खिलाड़ी के पैर भी कभी-न-कभी रपट ही जाते हैं।'

'तो तुम अपने साथ मुझे सानना चाहते हो?'

'अरे साहब कोई बच्चा थोड़े ही हैं। खेल खेलना है तो खुलकर खेलें। अगर सभी खिलाड़ी एक ही रंग में रंग जायें तो अच्छा ही होता है।'

'मतलब?'

'मतलब यही सिन्हा साहब कि हमारी तो हिम्मत आपको ही देखकर बढ़ी है।'

'यह सब तुम क्या बक रहे हो?'—सिन्हा के होंठ गुस्से में फड़फड़ा रहे थे।

'बक नहीं रहा हूँ हकीकत कह रहा हूँ—कोई उमाकान्त-सा बच्चा नहीं हूँ जो दुनिया या आप मेरी आँखों में धूल झोंक सकें।'

'गुलाम हसन, यह तुम अच्छी तरह जानते हो कि तुम हमारे एक अजीज दोस्त हो और तुम्हारा मेरे लिये इस तरह की बातें कहना कहाँ तक ठीक है!'

'आप दोस्त हैं इसीलिये तो कह रहा हूँ! आखिर खत्री और उमाकान्त से क्यों कुछ नहीं कहता।'

'तुम कहना क्या चाहते हो?'—सिन्हा ने ज़रा नर्म होते हुए कहा जिससे बात न बिगड़ जाये।

'आप मिस सावन्त को नहीं चाहते?'

'नहीं, बिल्कुल नहीं।'—सिन्हा की ज़बान लड़खड़ा रही थी। उनके पैर काँप रहे थे। साँस तेज़ी से चल रही थी।

'सिन्हा साहब, बस आपके इसी झूठ से ही तो परेशान रहता हूँ—अमां मुझसे क्या छिपाना, दो-चार नेक सलाह ही दूँगा।'

'मगर इसे चाहने का नाम नहीं दे सकते।'

'अब आये आप तरीके पर—चाहना न सही "साफ्टकार्नर" ही सही। चाहे नाक घुमाकर पकड़ लें या सीधे बात तो एक ही है। मकसद तो एक ही है।'

'गुलाम हसन, तुम सचमुच बहुत तेज हो मगर दोस्त होने के नाते अपने धर्म को साक्षी देकर कहो कि यह बात किसी तीसरे के कान में न जायेगी।'

'तोबा कीजिये सिन्हा साहब आपने भी खूब कही। अपने पैर पर अपने ही आप कुल्हाड़ी मारूँगा क्या इतना जाहिल समझ रखा है आपने। अरे आपकी भी तो हमें मदद की जरूरत रहेगी फिर आपसे बिगाड़कर यहाँ जिन्दा भी कौन रह सकता है।'

'तुम सचमुच एक समझदार दोस्त हो।'—सिन्हा की वही आँखें जो कुछ देर पहले बुझने-सी लगी थीं फिर चमक उठीं और शरीर में तेज आ गया।

'मगर बन्दे की एक नेक सलाह है!'

'क्या?'

'अगर आपको अपने मकसद में सफल होना है तो खत्री और उमाकान्त को भी सानना होगा।'

'मैं समझा नहीं।'

'समझ जाइयेगा। तारीफ तो इसी में है कि गुलगुला बनाये कोई और खाये कोई।'

'ज़रा अपने मुहावरे को और साफ करो!'

'मैं तो समझता था आप काफी समझदार हैं पर अभी कुछ-कुछ समझ और आनी बाकी है। मेरा मतलब सिर्फ इतना ही है कि बदनामी भी उमाकान्त और खत्री की हो जाये जिससे ओट में आप अच्छी तरह शिकार खेल सकें। इसके लिये बाकायदा प्लान बनाना होगा।'

'उमाकान्त से तुम्हारी गहरी दोस्ती है कहीं प्लान बनाते-बनाते तुम मेरी ही बात न उगल बैठो।'

'अजी दोस्ती भी कई तरह की होती है। यह दोस्ती वह नहीं जहाँ इस तरह के "सीक्रेट-प्लान" आउट किये जायें। मगर इससे पहले आपके लिये काफी मेहनत करनी पड़ेगी।'

'मेरे लिये?'—सिन्हा ने आश्चर्य से पूछा।

'हाँ, आपके लिये। कुमारी सावन्त पर काबू पाना आपके लिये काफी मुश्किल है।'

'कहते तो ठीक हो।'—सिन्हा के मुख से अनायास निकल गया पर अब वह कर भी क्या सकते थे।

'घबड़ायें नहीं, यह काम चुटकियों में हो जायेगा। बस मैं जैसे-जैसे बताऊँ वैसा ही आप करते चलें।'

सिन्हा का मन अन्दर-ही-अन्दर काँप रहा था। अब गुलाम हसन उनके लिये वह कौर बन गया था जिसे न वह निगल सकते थे न पेट में ले जा सकते थे। वह ऊपर से जितनी ही उससे दोस्ती दिखा रहे थे अन्दर-ही-अन्दर घबड़ा भी रहे थे। उन्हें ऐसा लगा अब तक वह चिड़िया जाल में फँसाने में माहिर थे मगर आज उनसे भी तेज़ चिड़ीमार ने उन्हें स्वयं फँसा लिया था। सावन्त का मोह वह छोड़ नहीं सकते थे। उन्होंने हमेशा पैर बढ़ाना सीखा था। हटाना नहीं। सोच रहे थे आज कहाँ से इस तरह की बात निकल

गई कि गुलाम हसन उनके दिल के राज़ को ही जान गया । उन्हें आज पहली बार अपनी पराजय का अनुभव हुआ पर उन्हें दिमाग पर भरोसा था और वह इस धुन में थे कि किस तरह से गुलाम हसन को फँसा मछली की तरह नदी से निकाल ऐसे फेंका जाय कि वह तड़प-तड़पकर अपनी मौत मर जाये । काम आसान नहीं था, पाला भी किसी आसान से नहीं पड़ा था अतएव उन्होंने बहुत सोच-समझकर ही कदम आगे बढ़ाने की सोची ।

गुलाम हसन आज ज़रूरत से ज्यादा खुश था । आज उसने ऐसे व्यक्ति पर विजय पाई थी जो अब तक सबको खेल खिलाता आया था । अब वह खुद उसे खिलायेगा और बतायेगा कि लखनऊ के पानी में कितनी कुव्वत है ।

दोनों ही खिलाड़ी अपने-अपने पैंतरे सँवारने में लगे थे । दोनों को एक दूसरे पर विश्वास न था पर बाह्य रूप में एक दूसरे के घने विश्वास-पात्र दिखलाई पड़ रहे थे । दोनों को ही आशंका थी । ज़रा सी चूक पर इस पार या उस पार होने का भय था लेकिन क्या मजाल कि किसी के चेहरे पर ज़रा भी शिकन हो । अब घूमने, उठने, बैठने में भी काफी साथ होने लगा । गुलाम हसन की पूछ अगर बढ़ रही थी तो सिन्हा की इज़्ज़त ।

श्री खत्री और श्रीमती मेहरा को सिन्हा एवं गुलाम हसन की अत्यधिक निकटता को देख आश्चर्य हो रहा था । वह इस ताक में थे कि उस राज़ को जान सकें जिसने उन्हें एक कर दिया है । श्रीमती मेहरा और खत्री दोनों ही उत्सुकतापूर्वक उमाकान्त की प्रतीक्षा करने लगे क्योंकि उसका सहयोग उनके कार्य को और भी सरल बना सकता था ।

: १२ :

शिमला से लौटने के उपरान्त कुमारी सावन्त के स्वभाव में एक विशेष परिवर्तन पाया गया । उसकी कर्कशता में कमी थी । उसके व्यवहार में वह

पहले सी रुखाई नहीं थी। यही नहीं अब वह सबसे हँसकर बोलतीं। श्रीमती मेहरा ने उसमें आकस्मिक परिवर्तन देखा तो हैरान हो गईं। गुलाम हसन भी सोच में पड़ गया किन्तु सबसे अधिक चिन्ता अगर किसी को हुई तो वह थे श्री सिन्हा।

श्री नालाकर पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। वह तो कतिपय पसन्द के आदमी थे जैसे दावत पसन्द, बोलना पसन्द, घूमना पसन्द। उनको इससे कोई सरोकार न था कि दुनिया में क्या परिवर्तन हो रहे हैं। उनको आँखों के सामने क्या हो रहा है। किसके स्वभाव में क्यों और कब परिवर्तन आ रहा है। उनकी राय में संसार परिवर्तनशील है, प्रकृति परिवर्तनशील है फिर मनुष्य क्यों न परिवर्तनशील हो यद्यपि वह स्वयं परिवर्तनशील नहीं थे। उन्हें पेंशन के ही समान तनख्वाह मिल रही थी और वह उसी में संतुष्ट थे।

श्री सिन्हा ने देखा सावन्त उमाकान्त के साथ अधिक घुल-मिल रही है। उमाकान्त भी बिना किसी हिचक के उसके निकट आता जा रहा है। उमाकान्त का अक्सर सावन्त के घर अकेले जाना और सावन्त का उसके घर आना उन्हें फूटी आँखों नहीं सुहा रहा था।

एक दिन उमाकान्त सावन्त को कविता के सम्बन्ध में समझा रहा था—'प्रत्येक कला किसी-न-किसी अर्थ में अभिव्यक्ति होती है। कविता भी एक कला है। कवि और साधारण मनुष्य में केवल इतना ही अन्तर होता है कि कवि मनुष्य की अपेक्षा अधिक भावुक और बिचारशील होता है। उसकी भी हार्दिक इच्छा होती है कि अन्य कलाकारों के समान अपने बिचारों का रस पान दूसरों को करा सके। अनादि-काल से कला के रूप में संगीत और काव्य आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। बौद्धिक प्रयत्न से मनुष्य यदि केवल चेतन मन तक ही पहुँच पाता है तो अचेतन मन तक पहुँचने के लिये केवल काव्य ही एकमात्र साधन है। यह हमारी भावनाओं और अनुभूतियों में सामञ्जस्य स्थापित करता है। कविता द्वारा जहाँ मनुष्य की कलुषित भावनाओं का परिष्कार होता है वहीं वह अपने सर्वोत्तम स्वत्व की भी प्राप्ति करता है। यही कारण है कि काव्य-रचना उच्चतम कोटि की रचनात्मक मानसिक प्रक्रिया मानी गई है।'

'पर आखिर इस कविता का प्रभाव हमारे मन पर कैसे पड़ता है यह मैं

अब तक नहीं जान सकी ।—सावन्त ने कहा ।

'आपका प्रश्न बिलकुल उचित है । इसका उत्तर फ्रायड के उस कथन से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है जहाँ उन्होंने कहा है कि अनुभूतियाँ प्रतीकात्मक रूप से हमारी दमित भावनाओं और संवेगों की अभिव्यक्ति होती हैं । कविता जहाँ एक ओर कवि की दमित भावनाओं और संवेगों का रेचन करती है वहीं दूसरी ओर पाठकों के हृदय को प्रभावित कर उनके भी प्रसुप्त मनोभावों को पुनः प्रकट कर प्रतीक रूप में संतुष्ट करती है ।'

श्री सिन्हा को सावन्त का कविता के प्रति यह स्नेह अधिक न भाया—'क्या आप भी कवयित्री बनना चाहती हैं जो इस प्रकार कविता में रुचि ले रही हैं ?'

'किसी वस्तु में रुचि लेने का यह अर्थ नहीं होता कि रुचि लेने वाला भी वही बन जाये । यदि ऐसा होता तो कितने ही लोग चित्रकार, शिल्पकार, और साहित्यकार बन गये होते ।'—सावन्त ने खरा-सा जवाब दिया ।

'फिर भी कोई मंतव्य तो होगा ही ?'—सिन्हा ने अपनी दलील को ढकने के अभिप्राय से कहा ।

'मंतव्य इतना ही है कि कविता जब अक्सर पढ़ती हूँ, सुनती हूँ तो उसके बारे में कुछ जान लेना कोई बुरी बात तो नहीं । फिर ज्ञान की वृद्धि अच्छी ही बात मानी गई है ।'

'अवश्य ज्ञान-वृद्धि करें पर काम के समय नहीं ।'—श्री सिन्हा ने तनिक कुपित होते हुए कहा ।

उत्तर में कुमारी सावन्त वहाँ से उठकर तेजी से बाहर निकल गईं पर इसी बीच गुलाम हसन भी वहीं आ गये ।

'क्या माज़रा है सिन्हा साहब ?'

'भाई बात इतनी ही है कि मैं काम पसन्द आदमी हूँ फिर कम-से-कम काम के वक़्त काम होना ही चाहिये ।

'यह सब किस सिलसिले में कह रहे हैं आप ?

'उमाकान्त जी मिस सावन्त को कविता की व्याख्या बता रहे थे, मैंने सिर्फ इतना ही कहा यह सब फुर्सत के वक्त की बातें है बस मिस सावन्त रुष्ट हो गई ।'

'महिलाओं का स्वभाव ही ऐसा होता है। मिनिट में आग और मिनिट में पानी।'

'हम लोगों ने कोई अधिक वक़्त तो नहीं लिया था, फिर इसमें दोष मेरा भी है।'

'नहीं साहब, इसमें आपका क्या दोष! आप कवि हैं, लेखक हैं। यों होने को तो आप जानते ही हैं मैं भी मामूली ही सही मगर एक शायर तो हूँ ही, कब तक लोगों को समझाकर अपना दिमाग खाली करते रहेंगे। फिर औरतें, आप तो जानते ही हैं, एक मुफ्त की बला होती हैं। बिगड़ी तो जूँ की तरह फेंक देंगी और चिपटीं तो ऐसे जैसे जोंक।'——गुलाम हसन ने मुस्कराते हुए कहा।

'मैं आपकी बात से अगर इत्तफ़ाक नहीं कर सकता तो इनकार भी नहीं कर सकता।'——सिन्हा ने धीरे से गुलाम हसन की ओर देखते हुए कहा। इसी बीच तेज़ी से मिस सावन्त कमरे में आई और उमाकान्त की मेज़ पर पड़े अपने पर्स को उठाते हुए बोलीं——'आज शाम को मेरे यहाँ चाय पर जरूर आयेंगे।'——और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बाहर चली गई।

दो क्षण के लिये शान्ति छा गई। श्री सिन्हा चुपचाप उठ खड़े हुए और उनके पीछे गुलाम हसन। दोनों ही बाहर चले गये। उमा गुम-सुम बैठा रहा तभी श्रीमती मेहरा ने मुस्कराते हुए कमरे में प्रवेश किया——

'कहिये क्या हो रहा है उमा बाबू?'

'कुछ नहीं यों ही बैठा हूँ।'

'अकेले!'——उन्होंने बड़े अन्दाज़ के साथ अपने कन्धे पर लटकते पर्स को उतार उसकी मेज पर रखते हुए कहा।

'जी हाँ, अभी तो अकेले ही हैं वरना इसके पहले कुमारी सावन्त, श्री सिन्हा, गुलाम हसन सभी यहाँ थे।'

'हाँ, मैंने भी उन्हें अभी ही जाते देखा है। मिस सावन्त तो कुछ तुनकी हुई सी दिख रही थीं।'

'हो सकता है, श्री सिन्हा से उनकी कुछ झड़प हो गई थी।'

'किस बात पर!'——श्रीमती मेहरा ने कतिपय आश्चर्य के साथ

कहा ।

'मैं उन्हें कविता की व्याख्या बता रहा था ।'

'मिस सावन्त और कविता की व्याख्या !'—उन्होंने इन शब्दों पर तनिक ज़ोर डालते हुए कहा गोया उन्हें ताज्जुब हो रहा हो ।

'जी हाँ, मिस सावन्त को ही कविता के सम्बन्ध में कुछ बता रहा था कि श्री सिन्हा ने कह दिया यह फ़ुर्सत के वक़्त की बातें हैं । बस यही उनकी नाराज़गी का कारण बन गया और वह चली गईं ।'

'अब समझी, मगर इसमें आपको चिन्तित होने की क्या ज़रूरत है । आपसे तो कुछ नहीं कहा ?'

'मुझसे तो नहीं कहा पर मेरे ही कारण मिस सावन्त को इस अपवाद में पड़ना पड़ा इसी का मुझे दुःख है ।'

'आप बहुत ही ज़्यादा भावुक हैं । अगर कहूँ कि ज़रूरत से ज़्यादा भावुक और अबोध हैं तो भी ठीक ही होगा । इतनी अधिक भावुकता से काम लेंगे तो यह समाज आपको खा जायेगा । आज के समाज में सफलता प्राप्त करने के लिये सिन्हा-सा क्रूर, गुलाम हसन-सा चालाक बनना पड़ेगा ।'

'पर बात तो कोई खास नहीं थी ।'

'बात खास हो या न हो आज की दुनिया में मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये तिल को ताड़ बनाने में भी संकोच नहीं करता । उसे तो एक बहाना मात्र चाहिये । यहाँ आने के पूर्व मैं भी आप ही के समान भावुक थी । कवयित्री का हृदय पाया था । प्रकृति और इन्सान दोनों से ही प्रेम था पर जिस भावुकता ने मुझे साहित्य में ख्याति प्रदान की उसी भावुकता के कारण यहाँ मुझे अनेक अपमान और हानि भी सहन करने पड़े । मैंने अपने इसी गुण को यहाँ आकर एक कमज़ोरी का कारण पाया और इस बात के प्रयास में लग गयी कि अपनी इस कमज़ोरी पर विजय प्राप्त कर सकूँ ।'

उमा श्रीमती मेहरा की बात को ग़ौर से सुन रहा था तभी गुलाम हसन ने प्रवेश करते हुए कहा—

'क्या बातें हो रही हैं श्रीमती मेहरा ?'

'कुछ नहीं यों ही हम लोग बातचीत कर रहे थे ।'

'क्या मेरे आने से कोई बाधा तो नहीं पड़ी ?'

'हरगिज़ नहीं! —श्रीमती मेहरा ने कहा।

'चलिये शुक्र है खुदा का।'—गुलाम हसन ने बैठते हुए कहा।

'कहाँ हैं मिस्टर सिन्हा?'—श्रीमती मेहरा ने पूछा।

'नानाकर साहब के पास बैठे हैं।'

'कोई खास बात?'

'ख़ास बात क्या होनी है। वही उनका पुराना ढर्रा। कुछ इसकी कह, कुछ उसकी कह।'

'आज सुना मूड कुछ ऑफ़ सा है।'

'अजी मूड के क्या कहने। वह तो त्यौरियों के साथ बदलता रहता है। फिर आप तो हमसे ज्यादा समझदार हैं खुद समझ सकती हैं। मुझसे पुरानी भी हैं, क्यों उमा भाई?'

'हसन साहब, नाम के लिये ही पुरानी हूँ पर आप तो देखते ही हैं कि क्या कद्र है मेरी।'

'कद्र क्या कुछ कम है!'

'वह तो आप स्वयं देखते और अनुभव करते होंगे।'

'मैं तो कुछ नहीं देखता।'

'आप सब कुछ देखते हैं समझते हैं पर देख-समझकर भी कुछ नहीं देखते-समझते। सुबह को सुबह, शाम को शाम कहने वाले की यहाँ कितनी पूछ होती है यह तो एक साधारण चपरासी भी जानता है।'

'छोड़िये भी मिस मेहरा इन बातों को। खामख्वाह इन बातों से दिमाग खराब करने से क्या फ़ायदा। हाँ, उमा साहब आप तो बिल्कुल खामोश बैठे हैं। अमां छोड़ें भी इस खामोशी को। दो दिन की ज़िन्दगी में जी भरकर हँस-खेल लेना चाहिये। मालूम नहीं आगे मौका मिले या न मिले। अरे हाँ, चपरासी कहाँ है उससे चाय मँगवाई जाय ताकि वातावरण में कुछ परिवर्तन आये।'—उन्होंने कॉल-बेल बजानी शुरू कर दी। चपरासी आ गया। उसे चाय लाने का आदेश दे राष्ट्र के नव-निर्माण पर अपने कुछ विचार प्रकट करने लगे, जिस विषय पर उन्हें आज क्लास में लेक्चर देना था। उनकी दृष्टि में राष्ट्र की योजनाओं की सफलता का मापदण्ड केवल आर्थिक उन्नति का माना जाना एक भारी भूल थी। उनका

विचार था कि केवल आर्थिक उन्नति से वृद्धि और चरित्र का ह्रास होता आया है। जब तक मनुष्य में आन्तरिक शान्ति और व्यावहारिक कार्य-कुशलता की वृद्धि नहीं होती राष्ट्र को उन्नति कभी नहीं हो सकती।

उमाकान्त की दृष्टि में उनकी ये बातें ठीक थीं पर जहाँ तक भारतवर्ष का प्रश्न था राष्ट्र की उन्नति उस वक्त तक नहीं हो सकती थी जब तक गाँवों में रहने वालों की उन्नति नहीं हो जाती। यहाँ के ग्राम मिलकर देश का हृदय बनाते थे। राष्ट्र में नव-जागृति पैदा करने के लिये आवश्यक था कि पहले हम ग्रामीण मन की शक्तियों को जानें और उनका सदुपयोग करें। यदि यहाँ के नगर मस्तिष्क थे तो मस्तिष्क का काम केवल होता है सोचना पर वास्तव में यह हृदय का ही कार्य है जो मस्तिष्क को बल देता है।

श्रीमती मेहरा की दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति प्रगति-प्रिय होता आया है। यह उसकी स्वाभाविक इच्छा होती है।

एक को प्रगति करते देख दूसरे की इस इच्छा में वृद्धि होती है। जिस तरह चुम्बक लोहे के स्पर्श में आ साधारण लोहा भी चुम्बक बन जाता है उसी प्रकार आशावादी, प्रफुल्ल एवं उद्योगी मनुष्य के सम्पर्क में आ ग्राम्यवासियों के भी आशावादी होने में सन्देह नहीं रह जाता। जब तक मनुष्य में निराशा का संचार होता रहेगा वह कभी प्रगति नहीं कर सकेगा क्योंकि उसके मन में सदा ध्वंसात्मक विचार आते रहेंगे।

गुलाम हसन को इस विचार-विमर्श से काफी लाभ हुआ। उसे आज के अपने लेक्चर में कुछ नयी और प्रैक्टिकल बातों को जोड़ने का अवसर मिला। अब तक वह अपने भाषण में विभिन्न विद्वानों, पुस्तक-लेखकों की ही बातों को दुहराया करता था पर उसे आज अवसर मिला कि कुछ व्यावहारिक प्रयोगों का भी उपयोग कर सके। चाय आ गई और सब चाय पीने में लग गये। श्री खत्री और अग्रवाल भी आ गये थे इसलिये गुलाम हसन ने चपरासी से उनके लिये कप-सासर लाने को कहा।

: १३ :

सन्ध्या का समय था, सूर्य की लालिमा अपना अन्तिम प्रकाश छोड़ रही थी। आकाश पक्षियों के कलरव से पूरित हो रहा था। मन्द-मन्द पवन मस्ती भरी चाल से विश्व को असीम मधुरिमा प्रदान कर रहा था। जिस रजनी की काली चादर को हटा पृथ्वी की गोद में जो प्राची का देव मुस्करा उठा था वही मानव की पाशविक-वृत्ति को देख अपनी यौवनिक उत्तेजना में आ उस प्रवृत्ति के प्रति अपना विरोध प्रकट कर धीरे-धीरे अपने प्रयास की असफलता से लज्जित हो पुनः लाल हो उठता और पृथ्वी की गोद में छिपने लगता। जिस प्रकार किनारे में विलीन होने के लिये हर लहर किनारे से टकराती है, लौट आती है और कभी-कभी कुपित हो उसे तोड़ भी डालती है पर अन्त में हार उसे भी उसी जल-राशि में विलीन होना पड़ता है। यही दशा सूर्य और संध्या की है। सूर्य प्रातः एक नयी आशा के साथ आता है, दिन में कुपित होता है और संध्या के समय घर विश्राम की खोज में चला जाता है पर पशु और मानव सभी उसकी प्रत्येक क्रियाओं का सदुपयोग करने से नहीं चूकते। वह तो दूसरों के दुःख में भी अपना ही सुख ढूंढ़ते हैं।

जिस प्रकार चोट खाकर कला मुखरित होती आई है, पीड़ा से निस्सरित आहें अधरों पर गीत बनकर छा जाती हैं उसी प्रकार ठोकरें खाकर इन्सान भी अपने को समझने की चेष्टा करने लगता है, उसकी बुद्धि और भी सुदृढ़ होने लगती है। उस समय विश्व को नश्वर कह स्वयं अमर बनने की चेष्टा में रत इनसान सोचता है कि उससे अच्छे तो वे पाषाण हैं जो उड़ती धूल को भी अपने हृदय पर आसन प्रदान कर उनका अंचल पुष्पों से भर देते हैं। युगों से नारी को छलने वाला पुरुष अब भी उसे क्यों छलना चाहता है। स्वार्थ को मनुष्य ने इतना ऊँचा स्थान क्यों दिया है। पिता पुत्र के लिये अपना पेट काटकर भी व्यय करता है। स्त्री स्वयं रूखा-सूखा खा पति को अच्छे-से-अच्छा भोजन क्यों देना चाहती है। बालक माँ को क्यों प्यार करता है। क्या यह सब अपने-अपने स्वार्थ के लिये नहीं है। स्वार्थ का दामन इतना विस्तृत हो गया है कि निःस्वार्थ को भी उसने अपने में ही छिपा

लिया है। फिर इतनी चोटों के बाद भी क्यों नहीं मनुष्य उस स्वार्थ के प्रति युद्ध छेड़ता जिसने उसे, उसके मन को, उसके चरित्र को, उसके सम्बन्ध को खोखला बनाकर छोड़ दिया है। अकेला स्वार्थ उसे इस तरह पराजित करता आये और विज्ञान के बल पर प्रकृति को जीतने वाला बुद्धिवादी इनसान उसका मुकाबला न कर सके यह मनुष्य की कितनी बड़ी कमज़ोरी है।

उमा खाट पर पड़ा खिड़की से बाहर आँखें लगाये इन्हीं विचारों में खोया ही था कि प्रभा ने बाहर से ही कहा--

'तुम तो कहते थे आज तुम्हारी चाय मिस सावन्त के यहाँ है, क्या रात को जाओगे?

'नहीं, अभी जाता हूँ!'--उमा हड़बड़ाकर उठ बैठा और शीघ्र ही मुँह-हाथ धो कपड़े बदलने लगा।

जिस समय वह सावन्त के घर पहुँचा वह एक प्रकार से उत्सुकतापूर्वक उसकी प्रतीक्षा करते-करते निराश-सी हो रही थी कि सहसा उसे देख उसके होंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई।

'बहुत जल्दी आये आप!'

'थोड़ी देर हो गयी।

'मैं तो समझी अब आयेंगे ही नहीं।'

'क्यों जब कह दिया था तो आता कैसे नहीं।'

'मैंने सोचा शायद दिन की घटना से डर गये हों।'

'मैं इस तरह डरने वाला आदमी नहीं हूँ।'

'फिर भी अफ़सर से तो डर लगता ही है।'

'अफ़सर से भी तभी डरा जाता है जब अपने में कोई कमजोरी हो, कमी हो। दफ्तर का जीवन व्यक्तिगत जीवन से सर्वथा भिन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की स्वच्छन्दता है कि अपने काम के बाद अपनी जिन्दगी में अपने ढंग से रहें।'

'अच्छा बतलाइये चाय के साथ और क्या लेंगे? वैसे मिठाइयाँ तो मैंने मँगवाली हैं पर शायद आप कुछ और भी चाहें।'

'आपने मिठाइयाँ भी नाहक मँगवालीं। सिर्फ चाय का एक प्याला

ही काफी होता।'

'यह भी आपने खूब कही। एक तो मैं चाय पिलाती नहीं किन्तु जब पिलाती हूँ तो जी भरकर।'—मिस सावन्त ने नौकरानी को आवाज दी और उसे शीघ्र ही चाय आदि लाने को कहा।

'उमा बाबू, आप सोचते होंगे मैं साहित्य-प्रेमी न होते हुए भी कविता में इतनी रुचि क्यों लेती हूँ। बात दरअसल यह है कि जब से मैंने आपकी दो-तीन कवितायें सुनी हैं मेरे हृदय पर एक विचित्र प्रभाव पड़ा है। मुझे ऐसा लगा जैसे वह मेरे जीवन को छूती हुई चल रही हों। इसीलिये आज मैंने कविता के सम्बन्ध में आपसे कुछ जानना भी चाहा था पर सिन्हा ने तो ऐसी हरकत की कि मैं अपने क्रोध पर काबू न पा सकी।'

'बात भी ठीक ही थी। दफ्तर में तो दफ्तर की ही बातें होनी चाहियें थीं। कविता का वहाँ क्या सरोकार।'

'अगर ऐसा ही है तो वह खुद गुलाम हसन से हँसी-मजाक क्यों करता है?'

'अफ़सर अफसर होता है। उसे इसकी छूट है चाहे जैसा भी करे।'

'पर समाज-सरकार के नियम तो सबके लिये समान हैं।

'नियम कमजोरों के लिये होते हैं बलवानों के लिये नहीं।'

'मगर न्याय तो इसकी अनुमति नहीं देता।'

'न्याय भी अब बलवानों के हाथ बिकने लगा है।'

'पर ये किसी देश की महानता के लक्षण नहीं हैं।'

'सब अपने आप समय आने पर उसी तरह ठीक हो जाता है जिस तरह पाप भर जाने पर घड़ा फूट जाता है।'

नौकरानी चाय ले आई थी। चार-पाँच प्लेटों में मिठाइयाँ बिस्कुट और कुछ नमकीन भी था।

'यह तो आपने बहुत चीजें मँगालीं।'—उमा ने कहा।

'इसीलिये कि आप भागने की जल्दी न करें। फिर मुझे आज जी भर-कर आपसे कवितायें भी सुननी हैं यदि श्रीमती उमाकान्त ने आपको मना न कर दिया हो।'

'इसका हक़ तो आपको बिना चाय पिलाये भी प्राप्त था।'

'मैं बिना किसी मूल्य के किसी से कुछ नहीं चाहती।'

'आपकी फार्मैलिटी के लिये मैं तो केवल कह ही सकता हूँ।'

जिस समय उमा और सावन्त चाय पी रहे थे उन्होंने देखा सामने से गुलाम हसन और सिन्हा नज़रें चुरायें आपस में बातचीत करते धीरे-धीरे चले जा रहे थे। शायद शाम को टहलने के लिये उन्हें इधर की सड़क ज्यादा पसन्द थी। उमा ने सोचा उन्हें भी आवाज़ देकर बुला ले पर इस कार्य के लिये उसने सावन्त की अनुमति लेना अधिक उचित समझा। उसने सावन्त से पूछा किन्तु उसने साफ इनकार कर दिया। वह नहीं चाहती थी कि सिन्हा और गुलाम हसन आ उनके स्वच्छन्द वातावरण में खलल डालें।

सावन्त ने चाय का प्याला होठों पर लगाते हुए कहा—'मैंने अब तक जो आपकी कवितायें सुनी और पढ़ी हैं उनमें मुख्यतः **ट्रेजैडी** को ही पाया है।'

'मैं वास्तव में दुःखान्त-पसन्द ही हूँ।'

'ऐसा क्यों है? आपका पारिवारिक जीवन तो बहुत सुखी है। आप और आपकी स्त्री एक दूसरे को चाहते भी बहुत हैं। अच्छी आय है, अच्छा परिवार है, फिर भी ऐसा क्यों है?'

'आप ठीक कहती हैं पर वास्तव में दुःखान्त कविता में जीवन का गांभीर्य अधिक होता है इसीलिये उसमें सहानुभूति की मात्रा भी अधिक होती है।'

'क्या सहानुभूति की भावना कलाकार की आत्मा को अधिक सन्तोष प्रदान करती है?'

'यह तो मैं दावे के साथ नहीं कह सकता पर इतना अवश्य है कि इससे हमारी आत्मा का विस्तार होता है।'

'पर इससे समाज का क्या कल्याण हो सकता है?'

'मनुष्य की सहनशीलता को देख हम अपने तुच्छ दुःखों को भूल से जाते हैं। इतना ही नहीं मेरी दृष्टि में जितनी सात्विकता की भावना दुःख में जागृत होती है उतनी सुख में नहीं।'

'आपकी बातें सुनकर तो ऐसा जी होता है कि मैं भी कुछ लिखूँ।'

'अवश्य लिखें !'

'आप इस दिशा में मेरे आचार्य होंगे।'

'मैं आचार्य होने के काबिल तो नही पर जो कुछ आपको परामर्श दे सकूँगा अवश्य दूँगा।'

'बीवी-बच्चे वाले आदमी हैं इतना समय आपको कहाँ मिलेगा ?'

'आदमी में कार्य के प्रति झुकाव होना चाहिये। समय का शिकवा तो एक व्यर्थ की बकवास है।'

शाम काफ़ी हो चली थी इसलिये उमाकान्त ने जाने की इच्छा प्रकट की पर सावन्त ने जब तक उससे चार कवितायें नहीं सुनलीं तब तक जाने की अनुमति न दी। उमा सुनाने में इतना मशगूल था कि उसने यह भी न देखा कि उसकी कविता के रस में खोई सावन्त का आँचल हवा में उड़ उसकी गोद में पड़ा था।

: १४ :

उमा खाट पर पड़ा नींद की खुमारी मिटा रहा था। प्रभा अलस पलक खोलकर उठने को ही हुई कि उसे याद आया आज उमा के दफ़्तर में छुट्टी है। उसने फिर पाँव फैला लिये और रेशमी रजाई को घसीट गर्दन तक ले आई।

सन्तू स्नान कर चुका था और अब किसी फिल्मी गीत के गुनगुनाहट के साथ अपने बाल सँवार रहा था। बाहर झाड़ू लगाने वाली जमादारिन ने आवाज़ लगाई—'बीबीजी'। तकिये में मुँह गड़ाकर प्रभा ने आवाज़ अनसुनी कर दी। वह जानती थी सन्तू तो है ही मगर उसे एकबारगी जाने क्या ख्याल आया कि एक झोंके के साथ उठी, कुछ रुकी और फिर धम्म से रजाई में आ पड़ी।

'क्या हुआ ?'—उमा ने रजाई में पड़े-पड़े ही कहा।

'कुछ नहीं।'

'फिर इतने झटके के साथ उठकर क्यों पड़ गई ?'

'जमादारिन आई है।'

'तो यह कौनसी नई बात है, वह तो रोज ही आती है।'

'ज़रा सामने रहकर काम करवाती हूँ।'

'क्यों ?'

'सन्तुवा उसके पीछे दीवाना है।'

'जाने भी दो, सन्तू की क्या हिम्मत। कभी उसके बाप ने भी इश्क नहीं किया होगा वह बेचारा किस खेत की मूली है।'

'तुम क्या जानो तुम्हें अपने कामों से फुर्सत भी हो।'

'अगर फुर्सत भी हो तो मैं यह थोड़े ही देखता रहूँगा कि कौन किससे इश्क कर रहा है। फिर किसी से दो-चार बातें हँसकर करने का मतलब यह तो नहीं होता कि किसी को किसी से प्रेम ही है।'

'किसी को अगर कोई जरूरत न हो तो वह क्यों किसी से हँसकर बातें करे।'

'आखिर वह जवान है कभी दो-चार बातों से मन बहला ही लें तो इसमें कौनसी बुराई है ?'

'अभी नहीं सोचते हो, कल को कुछ ऊँच-नीच हो जायेगा तब इधर-उधर दौड़ते फिरोगे।'

'तो क्या करूँ ?'

'एक दफा कसकर डाँट ही दो।'

'यह काम तो तुम भी कर सकती हो।'

'मगर तुम्हारे कहने और हमारे कहने में अन्तर है। तुम्हारी बात और होगी। मैं फिर भी औरत ही हूँ।'

'अच्छी बात है कोई मौका आयेगा तो जरूर कह दूँगा।

'अभी ही जाकर देख लो क्या कर रहा है।'

'तुम बिना इस रजाई से निकाले न मानोगी !'

'फिर आकर पड़ जाना।'

'अच्छी बात है।'—उमा बाहर निकला तो देखा जमादारिन खड़ी है, सन्तू उसके घड़े में पानी डाल रहा है मगर उसकी आँखें जमादारिन के

वक्षस्थल पर गड़ी हुई हैं और वह मुस्करा रहा है। जमादारिन सिर नीचा किये खड़ी है।'

'बस करो जमादारिन ने कहा।'

'अरे अभी तो काफी भरने को बाकी है।'—सन्तू ने मुस्कराते हुए कहा।'

'घड़ा उठेगा नहीं।'

'मैं उठवा दूँगा क्यों घबड़ाती है?'

'तू अजीब आदमी है।'

'अरे दुनिया ही अजीब है।'

'बस करता है कि बहूजी को आवाज दूँ।

'अरे चिल्लाती काहे को है ले!' —कह सन्तू ने बाल्टी किनारे रख दी। सर घुमाकर देखा तो उमा खड़ा था। जमादारिन वक्षस्थल पर से हटे फटे टुकड़े को सँवारती हुई घड़े का पानी ले खिसक गई। वास्तव में वह जवान थी और जवानी में उसकी सुन्दरता उन फटे चीथड़ों के बीच झाँक रही थी।

'सन्तू, जरा सुनना।'—उमा कमरे में आ गया।

'हाँ भैया।'—सन्तू ने डरते हुए कमरे में प्रवेश किया।

'तू जमादारिन को क्यों घूरकर देख रहा था?'

'नहीं तो।'

'सन्तू, तू झूठ बोलना भी सीख गया है।'—उसने तनिक ऊँचे स्वर में कहा। सन्तू खामोश रहा।

'बोलता क्यों नहीं है?'

'क्या कहूँ भैया?'

'कहेगा क्या मैंने आज तेरी हरकत अपनी आँखों से देखी है। तुझे यहाँ आकर यह कौनसा चस्का लग गया है। ऐसा ही है तो शादी क्यों नहीं कर लेता।'

'भैया, गरीब आदमी ठहरा, ब्याह करके औरत को खिलाऊँगा क्या?'

'अगर खिलाने को नहीं है तो यह ज़िम्मेदारी मेरी थोड़े ही है, लेकिन इस तरह की हरकत से तू अपना मुँह तो काला करेगा ही साथ ही हमारी

भी बदनामी करवायेगा। यदि ऐसा ही है तो तू लखनऊ वापस चला जा। मैं किसी दूसरे आदमी का इन्तजाम कर लूँगा।'—उसने रोष के साथ कहा।

'भैया, ऐसा मत कहो। जान चली जाये लेकिन आप पर बदनामी न आने दूँगा। मुझे माफ़ कर दो।'—उसने करुणापूर्ण शब्दों में आँखें नीची करते हुए कहा।

'मेरा क्या है। बच्चा, यह परदेश है। यहाँ की औरतें बड़ी तेज होती हैं। उल्टे उस्तरे से तेरे बाल मूड़ डालेंगी। अब आइन्दा से कोई ऐसी हरकत दिखाई न पड़े।'—उमा ने उसे समझाते हुए कहा और सन्तू सिर नीचा किये बाहर चला गया। उमा फिर रेजाई में आ पड़ा।

'देख लिया अपनी आँखों से।'—प्रभा ने कहा।

'देख लिया।'

'नौकरों को ज्यादा सर भी नहीं चढ़ाना चाहिये।'

'क्या करे बिचारा जवान है। वह थोड़े ही कुछ करता है, वह तो उसको जवानी उसे मजबूर करती है। इस उम्र में हर आदमी को जरूरत महसूस होती है।'

'बस तुम यही सोचते रहा करो।'—प्रभा उठ बैठी और बाथरूम में चली गई।

उमा सोच रहा था प्रकृति कितनी बलवान है। उस पर विजय पाना आसान नहीं। यौवन में मनुष्य की उत्तेजना जब जाग उठती है उस पर नियंत्रण पाना मुश्किल हो जाता है। मनुष्य की जब उक्त उत्तेजना की पूर्ति नहीं होती वह उसका दमन करना चाहता है। दमन करने की इच्छा नष्ट न होकर उसे विकृत मार्ग की ओर ले जाती है। भोगेच्छाओं के दमन से उसमें ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है कि उसकी चेतना अस्त-व्यस्त हो जाती है। वह आत्मनियंत्रण खो बैठता है। कामुकता मनुष्य को अन्धा बना देती है। वह विवेक खो बैठता है। किसी हद तक यह बात उन व्यक्तियों के लिये उचित भी है जिन्हें अपनी पिपासा की शांति का कोई साधन नहीं मिलता और यदि सर्वसाधारण रूप से वह इस पर विजय पा सकते तो नगरों में वे रंगीन बाजार और रंगीन रातें न होतीं जहाँ वेश्यायें

अपने तन को वेचकर रोटी कमाती हैं। चेहरों पर बीमारी के दाग़ और पीलेपन के बीच यह बेबस बुतें जो पुरुषों के सिक्कों के सहारे नाचती हैं अपने शरीर को खोखला न करतीं।

पर उनके लिये क्या कहा जाय जो विवाहित होते हुए भी अपनी इस प्यास से तृप्त नहीं होते। वह क्यों इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। उनके हृदय में स्त्री के लिये क्यों भूख समाई रहती है जो घर का भोजन छोड़ जूठन की तलाश में भटका करते हैं। जिनके मासूम बच्चे राष्ट्र के भावी निर्माता हैं वह क्यों इस पाप को अपनाते हैं। क्यों दूसरों की अस्मत लूटने में संतोष का अनुभव करते हैं।

उन गरीब मजदूरों की बात तो समझ में आती है जो सालों घर से दूर रहते हैं, जिनमें इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि अपना परिवार अपने साथ नगर में रख सकें या आसानी से आ-जा सकें। यदि वह वेश्यालयों में जा चन्द पैसों के सहारे अपनी इस पिपासा को शान्त करते हैं तो हम उन्हें नीच और चरित्रहीन कहते हैं। उन बलवानों की ओर हमारी आँख उठाने की हिम्मत क्यों नहीं होती जो घर में हँसते-गाते मुन्ने के भविष्य का चिन्तन छोड़, चाँद-सी मुस्कराती बीवी की आँख में धूल झोंक सिक्कों पर बहार खरीदते हैं। हमेशा नई शमा से अपने दिल को रोशन करते हैं। हमारे में क्यों नहीं साहस होता कि हम उनकी ओर अँगुली उठा सकें। हम कायर हैं। समाज ने हमें कायर बना दिया है। हम सच को सच कहने से भय खाते हैं।

यदि हम वास्तव में चाहते हैं कि राष्ट्र में एक स्वस्थ चरित्र का निर्माण करें तो पहले उन बेबसों पर नहीं सफेदपोशों पर हमला करना होगा जो काले होकर भी दूध के धुले बनते हैं। इस प्रगति के युग में शोषण का अब भी वही रूप शेष रह गया है जो पहले था। हम भेद-भाव मिटाने की आवाज तो लगाते हैं पर मिटाते नहीं। कार्ल मार्क्स ने भले ही शोपण की नीति की जड़ खोदने की चेष्टा की है पर वह पूंजीवाद पर तो कुठाराघात कर सके मगर शोषण की नीति ज्यों की त्यों बनी रही। मानवता का उद्धार करना है, यदि व्यक्ति को ऊँचा उठाना है तो पहले हमें शोषण को तोड़ना होगा। भटके हुओं को राह पर लाना तब तक संभव नहीं जब तक हम

प्रेम-शक्ति को शक्तिशाली एवं सही रूप प्रदान न कर सकेंगे। भौतिक शक्तियों के शिकंजे में जकड़े हुए और उसके नशे में अन्धे इन्सान को उस शिकंजे से छुड़ा उनके अंधकार को दूर करना होगा। दूसरों की बुराई देखने के पहले हमें अपनी बुराई देखनी होगी। मानव अपने अस्तित्व और विकास के लिये संघर्ष करता आया है और करता रहेगा पर हमें उसे नया रूप देना होगा। हमें आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं से कहीं अधिक मानवता की समस्या को हल करना है। मानवता के उबरने पर सामाजिक दासता स्वतः टूट जायेगी। आर्थिक गरीबी अपने आप मिटने लगेगी और हम राजनीति के गुलाम मात्र न रह जायेंगे।

आज हम निर्बल पर झूठे अभियोग लगा उन पर अत्याचार कर रहे हैं। जो अभियोगी है मुस्करा रहे है, जिन्दगी की बहार में खिल रहे हैं। हम में इतना साहस नहीं कि दूध को दूध और पानी को पानी कर सकें। आखिर क्यों—सिर्फ इसलिये कि हम भी उन्हीं की श्रेणी में हैं। सब कुछ देखकर आँखें मूंद लेना चाहते हैं।

आग लगाना आसान होता है; बुझाना मुश्किल। हम अपने जीवन में कितनी ही आगें लगाते हैं और उसकी लपटों को देखते हैं, खुश होते हैं, संतोष की आहें भरते हैं पर क्यों नहीं ऐसी आग लगाते जो विश्व का कल्याण कर सकें। जिसमें पाप और अन्याय जलकर खाक़ हो जायें। इनसा-नियत, ईमान और सच्चाई के से धातु उन लपटों में और भी निखर उठें।

जिस काजल को आँख में लगाने से हमारी आँखों में तेज आता है, रोशनी बढ़ती है उसी काजल को उजले कपड़ों पर लगते ही हम मिटने के लिये धोबी के हवाले कर देते हैं। क्यों—सिर्फ इसलिये कि वह कुरूप है। हम उसके गुण की कद्र नहीं करना जानते।

वही गरीब जो हमें समाज में ऊँचा स्थान प्रदान करता है, हम से बदले में क्या पाता है? केवल अपमान, अत्याचार और लांछन। हम क्यों नहीं इस प्रश्न पर ग़ौर करते। हमारी नैतिकता का ढोंग कहाँ चला जाता है? यह सब एक गूढ़ प्रश्न हैं जिन्हें हमें आज नहीं तो कल सुलझाना ही पड़ेगा।

: १५ :

घृणा और प्रेम एक ही प्रश्न के दो उत्तर हैं पर पहले किसका जन्म हुआ यह कहना कठिन है। जहाँ प्रेम का प्रसार विष को अमृत में बदल देता है वहीं अन्तस्थल में बैठा अहं घृणा को प्रसारित कर उन सबको नष्ट कर डालना चाहता है जो उसे पीड़ित करते हैं। मन जब अप्राप्त वस्तुओं के पीछे भटकने लगता है वह अशान्त हो उठता है। घृणा और प्रेम के द्वन्द्व में घृणा की ही जीत होती है और वह निराशावादी बन जाता है। पर इन सबसे बढ़कर जो होता है वह है ईर्षा का जन्म। ईर्षा मनुष्य को इतना नीचे गिरा देती है कि वह जीवन को एक खिलौना समझने लगता है, उसके लिये जिन्दगी की कीमत कौड़ी बराबर भी नहीं रह जाती और वह उन सभी प्रयासों का प्रयोग करने लगता है जो उसे उस स्थान पर ला सकें जहाँ वह आना चाहता है।

सिन्हा की भी यही हालत हुई। उन्हें उमा का सावन्त के इतना निकट पहुँचना बुरा लगने लगा और वह उसी से, जिसे पहले अपना दोस्त समझते थे, घृणा करने लगे। यदि कहा जाय कि घृणा उन्हें अपने आप से होने लगी और ईर्षा उमा से तो अधिक उचित होगा।

सावन्त से तो वह खिंचे-खिंचे रहने लगे और उमा के कामों में तरह-तरह की भूलें निकालने लगे। यही नहीं नानाकर से कह उसे अनेक प्रकार की यातनायें दिलाने लगे। वही उमा जो कुछ दिन पहले अपनी कार्य-कुशलता के लिये यश का भागी होता था आज हैरान था। श्री नानाकर की झिड़कियों से उसका आत्मसम्मान कराह उठा। झूठे लांछनों से वह विक्षिप्त-सा होने लगा। उसने देखा उसके अपमान के लिये कोई जाल बाकी नहीं छोड़ा जा रहा है।

सावन्त को नानाकर कुछ कह नहीं सकते थे इसलिये उसके जीवन में वही स्थिरता थी पर उमाकान्त बुरी तरह से कुचला जाने लगा। बात यहीं तक रहती तो भी उमा उसे सहन कर लेता लेकिन बात तो प्रभा तक पहुँच चुकी थी। श्री और श्रीमती सिन्हा ने उसके कान भरने शुरू कर दिये थे। उसके और सावन्त के सम्बन्ध पर सन्देह उत्पन्न करने की कोई

चेष्टा बाकी न रखी थी। गुलाम हसन के सहयोग से यह कार्य उन्होंने इस कुशलता से किया था कि लोगों को विश्वास करना ही पड़ता।

एक दिन इसी विवाद को लेकर प्रभा और उमा में काफ़ी बहस भी हुई और उमा ने अपने पवित्र सम्बन्धों का विश्वास दिलाने की चेष्टा की, सिन्हा की चालों से अवगत कराना चाहा पर नारी नारी ही होती है। उसका आत्म-सम्मान जाग उठा था। वह यह कभी नहीं चाहती थी कि उसके जीते जी उमा किसी और स्त्री के पीछे भटके। उसने उसे विश्वास दिलाना चाहा कि वह अपनी उन समस्त कमज़ोरियों को दूर करने का प्रयास करेगी जिनके कारण उसका पति भटक रहा है।

आज के युग में सत्य को किसने समझने की चेष्टा की है। वह उसे जितना ही संदेह-निवारण के लिये फुसलाता, मनाता, प्रभा उतना ही दुःखी होती और फफककर रो पड़ती। उमा कुछ सोच नहीं पा रहा था कि वह कैसे अपनी निर्दोषता का प्रमाण दे कि एक दिन जब वह गुलाम हसन के यहाँ बैठा चाय पी रहा था श्री सिन्हा भी आ पहुँचे।

'कहिये मिस्टर उमाकान्त, आज शाम के वक्त यहाँ कैसे?'—उन्होंने गहरा कटाक्ष किया।

'मैं तो अक्सर ही यहाँ आ जाता हूँ।'

'कहाँ आ जाते हैं। आपको तो फुर्सत ही नहीं मिलती। अब तो आप हम लोगों की दोस्ती भी भूल गये।'

'मैंने हमेशा दोस्ती करना सीखा है तोड़ना नहीं।'

'यह तो हम सब देख रहे हैं।'—श्री सिन्हा और उनके साथ गुलाम हसन अट्टहास कर उठे। उमा चुप रहा।

'आपके लिये भी चाय बनाऊँ सिन्हा साहब?'—गुलाम हसन ने पूछा।

'ज़रूर, इसमें भी कोई पूछने की बात है।'

गुलाम हसन ने एक प्याले में चाय ढाल दी और चाय का प्याला उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा—'आजकल मिस्टर उमा कुछ उदास-से रहते हैं।'

'क्यों उमा बाबू?'—सिन्हा ने आश्चर्य के साथ पूछा।

'नहीं, ऐसे ही तबियत कुछ ढीली है।'